RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 27 मार्च 2015

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका अप्रैल 2016

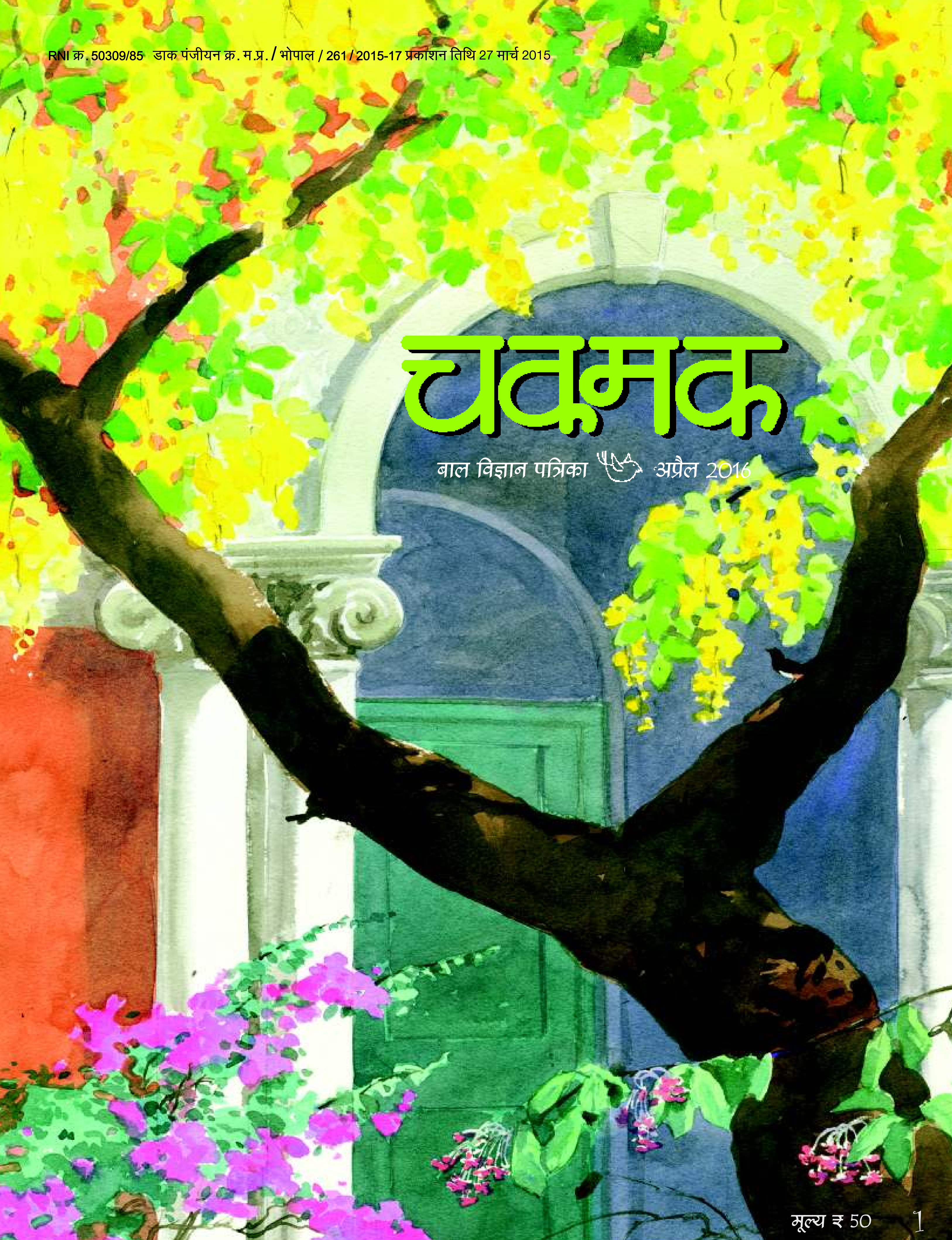

मूल्य ₹ 50

चकमक कविता कार्ड

पढ़ो और फिर चाहो तो अपने दोस्त को इसी कार्ड के दूसरी तरफ एक चिट्ठी लिख दो।

लेकिन अगर ईश्वर पेड़ और फूल है

लेकिन अगर ईश्वर पेड़ और फूल है
और पहाड़ और चाँदनी और सूरज
मैं उसे ईश्वर क्यों कहता हूँ?
मैं उसे फूल और पेड़ और पहाड़ और चाँदनी कहूँ
क्योंकि अगर, सिर्फ इसलिए कि मैं उसे देख सकूँ
वह अपने आप को सूरज और चाँदनी
और फूलों और पहाड़ों में बदल देता है,
अगर वह मुझे पहाड़ों और पेड़ों की तरह दिखता है
और चाँदनी और सूरज और फूलों की तरह,
तो यही उसकी मर्ज़ी होगी कि मैं उसे जानूँ
पेड़ों और फूलों और चाँदनी और सूरज की तरह।

- फर्नांदो पेस्सोआ

अनुवादः तेजी ग्रोवर

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

चकमक :0755-4252927 9425010115 chakmak@eklavya.in

कविता कार्ड के चार गुच्छे। एक गुच्छे में बारह कविताएँ। एक गुच्छे की कीमत है पचास रुपए।

इन्हें मँगाने के लिए तुम चकमक के पते पर लिख सकते हो। या हमें फोन कर सकते हो। या चाहो तो सीधे ऑनलाइन मँगा लो - Http://www.eklavya.in/pitara/chakmak_kavita_cards

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 355 अप्रैल 2016

इस अंक में

4 अगर-मगर / गुलज़ार के जवाब
6 प्यारे भाई रामसहाय / स्वयं प्रकाश
9 पढ़े-लिखे को फारसी क्या! / वरुण ग्रोवर
10 झोली तो दिखाओ / प्रभात
12 अमलतास और गाँधी / शम्पा शाह
16 चॉकलेट / शामली
18 मँगरू बाँसफोर / मँगरू बाँसफोर
20 चश्मा नया है - ऑपरेशन थिएटर / अलीशा
22 चींटियों की दावत / विनता विश्वनाथन
24 माघ के मेघ / पद्मजा गुनगुन
26 बच्चों के पन्ने / प्रद्यामणि, सिमरन
28 आँगन में बगुला / गुरु प्रसाद शर्मा
30 माथापच्ची
31 एक गतिविधि / विवेक मेहता
32 झटपट-नटखट / रमेश उपाध्याय
36 ...और हाथी क्या सोचते होंगे?
40 स्कूल के भूत का रहस्य / अनूप मणि त्रिपाठी
43 एक था हाजी एक था नाजी / स्वयं प्रकाश
44 भूरी बाई से बातचीत
48 चित्र पहेली / कविता तिवारी

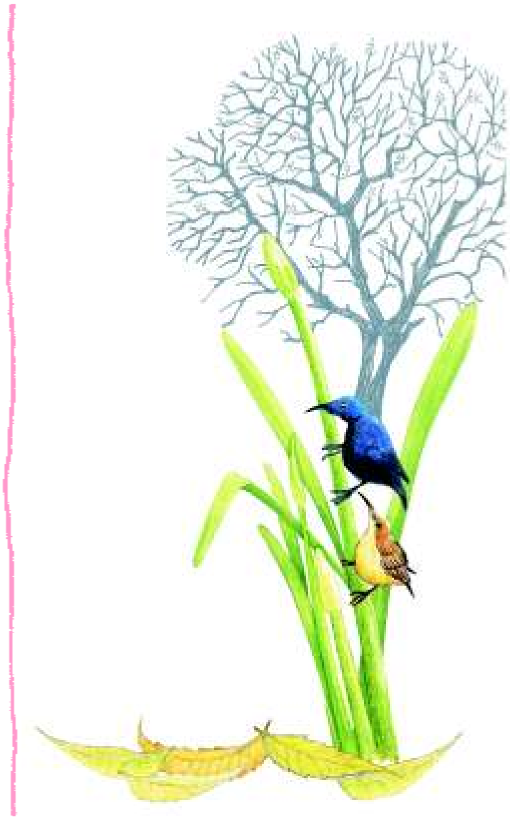

चित्रः दिलीप चिंचालकर

एक हाथी के बारे में तो फिर भी उसका शरीर पता चलता है पर एक चींटी के बारे में क्या जानता हूँ? वह तो ठीक से दिखती तक नहीं। जहाँ मेरा जूता खत्म होता है वहाँ से उसका आसमान शुरू हो जाता है। अप्रैल में कुत्ते जीभ निकाले गर्मी और प्यास से बेहाल घूमते नज़र आते हैं। वे क्या सोचते होंगे इस दुनिया के बारे में? प्यास से बेहाल वे नदी के बारे में और बादलों के बारे में क्या सोचते होंगे। यह तो कभी-कभार ही होता है जब वे आसमान की तरफ सिर उठाए रोते हैं। वह क्षण मुझे बहुत दुखी कर देता है। लगता है जैसे उस क्षण इस ज़मीन से उनका विश्वास उठ गया है। कभी-कभी मैं एक कुत्ते की ऊँचाई पा लेना चाहता हूँ। घर में जब कोई नहीं होता तो चुपचाप अपने दोनों हाथों को पैरों की तरह इस्तेमाल कर कुत्ते की नज़र पा लेना चाहता हूँ। देखना चाहता हूँ कि दो-ढाई फुट के कद से दुनिया कैसी नज़र आती है।

आवरण चित्र
शुद्धसत्त्व बसु

हाशिए के चित्र
इंटरनेट

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
पिटारा

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव
ब्रिजेश यादव

एक प्रति : 50.00
वार्षिक : 500.00
तीन साल : 1350.00
आजीवन : 6000.00
सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण- बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

अगर मगर

1 जो मन में होता है वह मैं लिख नहीं पाती। लिखने बैठती हूँ तो कुछ और ही लिखा जाता है। क्या करूँ?

– प्रियंतरा भारती, पाँचवीं, बालभवन किलकारी, पटना

जवाबः इसी को अभ्यास कहते हैं – दूसरे का सोचा नहीं, अपना महसूस किया लिखने की कोशिश ही लिखाड़ी बनाता है!

2 गोल चीज़ें लुढ़कती क्यों हैं?

– निमरा, 12, भोपाल

जवाबः क्योंकि उनमें किनारा नहीं होता जो रोक ले! जैसे हमारी ज़मीन!

3 क्या आपने कभी कोई डॉगी पाला है? उसका नाम क्या है?

– चिराग, आठवीं, भोपाल

जवाबः पाला – बॉक्सर था – चौदह साल जिया – फिर कोई डॉगी नहीं पाला!

चित्रः अतनु राय

4 एक अच्छा कवि बनने के लिए सबसे पहली चीज़ क्या होनी चाहिए?

– सान्या शर्मा, पाँचवीं, डीपीएस, लुधियाना

जवाबः पढ़ाई – एक सौ पढ़ो तो, एक लिखो!

5 आपको कविता देकर चित्र बनवाने का ख्याल कहाँ से आया?

– कुणाल सूद, कार्तिक, पाँचवीं, डीपीएस, लुधियाना

जवाबः आपके एडिटर सुशील शुक्ल से!

6 आप बोली रंगोली में हमें पंक्ति देते हैं चित्र बनाने के लिए। क्या आप खुद भी चित्र बनाते हैं?

- सिद्धान्त, पाँचवीं, डीपीएस, पटना

जवाबः नहीं – आप सब से सीख रहा हूँ!

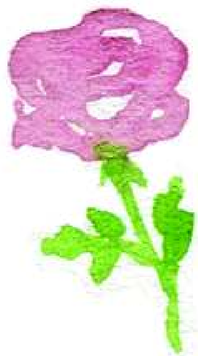

7 धरती पर सबसे पहले कौन आया होगा?

- विश्वास स्कूल, गुड़गाँव

जवाबः मेरा ख्याल है बादल – जिन्हें साईंसदान गैस कहते हैं! तुम्हें पता चले तो मुझे भी बताना!

8 बड़े ही होशियार क्यों होते हैं?

- तारा, भागलपुर

जवाबः आपकी उम्र में वे आपसे कम होशियार थे!

9 हमारे जो चित्र चकमक में नहीं छपते क्या आप उन्हें फेंक देते हैं?

- देवां हर्श, पाँचवीं, डीपीएस, पटना

जवाबः बिलकुल नहीं! चकमक के कम्प्यूटर में महफूज़ हैं!

10 हमारे चित्र नहीं छपते तो हमें बुरा लगता है, आपके गीत चुने नहीं जाते तो आप कैसा महसूस करते हैं?

- साद अहमद, पाँचवीं, डीपीएस, पटना

जवाबः आप ही जैसा लगता है – लेकिन दोबारा कोशिश करता हूँ कि पहले से बेहतर करूँ!

11 सूरज की उम्र कितनी होगी?

- आदित्य, आठवीं भोपाल

जवाब : चार अशारिया छै (4.6) बिलियन बरस! ऐसी ही अब तक की उम्र हमारी ज़मीन की है!

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश

हमारे स्कूल में कुछ न कुछ गतिविधि साल भर चलती रहती थी। कभी भाषण प्रतियोगिता तो कभी वाद-विवाद, कभी निबन्ध प्रतियोगिता तो कभी वार्षिक खेलकूद। जब भी ऐसा कुछ होता, बाहर से कुछ खास लोगों को मुख्य अतिथि या निर्णायक के रूप में बुलाया जाता। हर कार्यक्रम के बाद जलपान का आयोजन होता जिसमें अतिथियों के साथ प्रधानाध्यापक और अन्य अध्यापक भी शामिल होते।

समस्या यह थी कि जलपान की व्यवस्था करे कौन? चपरासियों ने ज़्यादा देर तक रुकने से मना कर दिया था। लड़कों से कहा गया था लेकिन वे भी एकाध बार तो आ जाते और फिर कतराकर निकल जाते। ऐसे में जलपान की व्यवस्था का पूरा ज़िम्मा हमारी कक्षा के छात्र गणेशीलाल ने लगभग स्थाई रूप से सम्हाल लिया।

गणेशीलाल नाश्ते को कागज़ की प्लेटों पर सजाता, अतिथियों की संख्या देखकर उसके अनुसार हर प्लेट में नाश्ते की मात्रा को कम-ज़्यादा करता, हरेक के आगे प्लेट ले जाकर रखता। सब खाकर चले जाते तो जूठी प्लेटें समेटकर डस्टबिन में डालता और फिर अपनी प्लेट लेकर खाने बैठता। कभी नाश्ता बच जाता तो अपने अँगोछे में बाँधकर घर ले जाता। जब भी ऐसा होता, वह बहुत खुश नज़र आता।

गणेशीलाल शहर से सटे एक गाँव से साइकिल पर आता था। उसकी साइकिल एकदम खटारा थी। पैडल की जगह कपड़े को लपेटकर सुतली से बाँध दिया था। सीट टूटी हुई थी, टायर घिसे हुए थे। साइकिल के साथ एक छोटा-सा पम्प और पंचर जोड़ने का सामान हमेशा साथ रहता था। इस साइकिल को गणेशीलाल हमेशा ताला लगाकर रखता था। हम हँसते थे कि भला इसकी साइकिल को कौन चोर ले जाएगा!

स्कूल पहुँचने में गणेशीलाल को हमेशा देर हो जाती थी, इसलिए पहले पीरियड में तो उसे लगभग रोज़ ही बाहर खड़े रहना पड़ता था।

गणेशीलाल के पिताजी नहीं थे और उसकी माँ दूसरों के खेत पर काम करती थी। छुट्टी के दिन गणेशीलाल भी माँ के साथ काम करता था। उसके कोई भाई-बहन भी नहीं थे। हम लोगों के हाथ गुलाबी-गुलाबी थे लेकिन गणेशीलाल के हाथ कठोर और जगह-जगह से फटे हुए थे। गणेशीलाल को बारह महीने ज़ुकाम रहता था और उसकी नाक में सेमुड़ भरा रहता था जिसे वह थोड़ी-थोड़ी देर में सुड़कता रहता था। जब उसकी सुड़-सुड़ क्लास को डिस्टर्ब करने लगती तब सर उसे डाँटकर कहते, “जाओ! नाक सिनक कर आओ!” थोड़ी देर को शान्ति रहती लेकिन फिर वही शुरू हो जाता।

गणेशीलाल का बस्ता फटा-पुराना था। किताबें उसके पास एक-दो ही थीं और क्लास में सब विषयों के नोट्स लेने के लिए वह एक ही कॉपी का इस्तेमाल करता था। उसमें भी वह इतने छोटे अक्षर लिखता था कि कॉपी की दो छपी लाइनों के बीच उसकी चार लाइनें आ जाती थीं।

एक बार खूब बारिश हुई और ओले भी पड़े। दूसरे दिन गणेशीलाल पूरे दो पीरियड खत्म होने के बाद स्कूल पहुँच पाया। जब उसने “मे आई कमिन सर” किया तो सब चौंक गए। सर ने पूछा, “गणेशीलाल! तुम अब आ रहे हो?” गणेशीलाल बोला, “सर! आई एम सॉरी! लेकिन बर्फ पर मेरी साइकिल चल ही नहीं पा रही थी।”

गणेशीलाल की बात सुनकर सर का मुँह खुला का खुला रह गया लेकिन बाकी सारे बच्चे ज़ोर-से हँस पड़े। इससे ज़्यादा साहसी और मज़ेदार झूठ आज तक किसी ने नहीं बोला था।

लेकिन उसी समय गणेशीलाल ने थैले

में से कोई दो वर्गफीट की बर्फ की एक सिल्ली निकालकर दिखाई और बोला, "मैं जानता था कोई विश्वास नहीं करेगा।"

दरअसल वह मिट्‌टी पर पड़े हुए और अब तक जमे हुए ओलों की एक सिल्ली जैसी थी।

गणेशीलाल को कक्षा में आने दिया गया।

लेकिन इस घटना में उसकी एकमात्र कॉपी गलकर नष्ट हो गई थी।

इसलिए परीक्षा से पहले गणेशीलाल क्लास के हर बच्चे से उसे एक दिन के लिए अपनी कॉपी देने की प्रार्थना करने लगा।

लेकिन किसी ने उसे अपनी कॉपी नहीं दी। परीक्षा के ठीक पहले कोई किसी को अपनी कॉपी कैसे दे देता? वो भी गणेशीलाल जैसे आदमी को! जिससे अपनी खुद की कॉपी नहीं सम्हाली गई! न बाबा!

गणेशीलाल रुआँसा हो गया। उसके पास किताब तो थी ही नहीं, अब कॉपी भी नहीं थी। क्या करेगा परीक्षा में? क्या उसका पूरा एक साल खराब हो जाएगा?

बालकिशन को पता चला तो उसने थोड़ी देर सोचने के बाद गणेशीलाल की समस्या का एक हल निकाला।

उसने गणेशीलाल को अपनी कॉपी तो नहीं दी, लेकिन उससे कहा कि वह कुछ

चित्रः अतनु राय

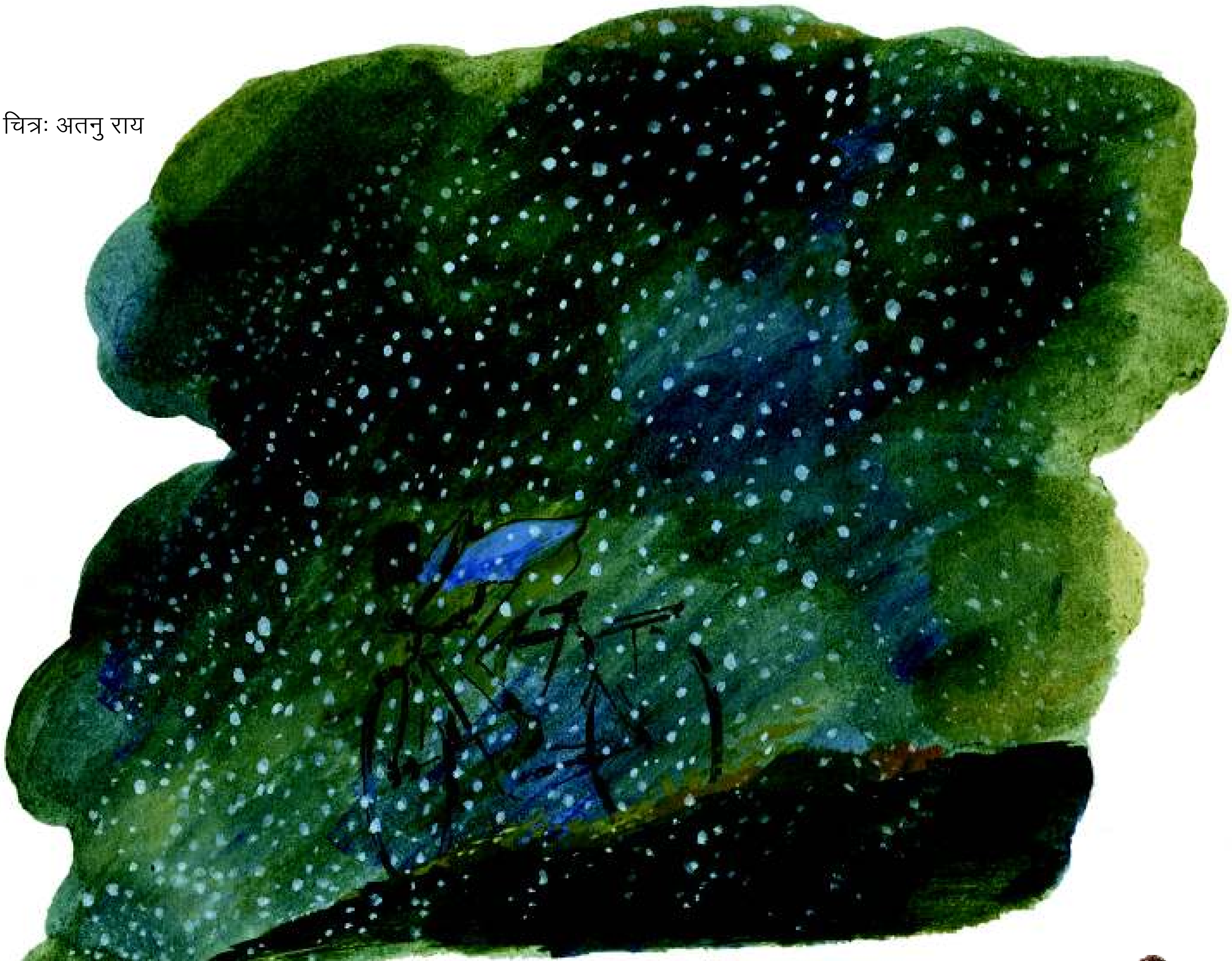

दिनों के लिए गाँव से आने-जाने की बजाय बालकिशन के साथ उसकी कोठरी में ही रहे और उसके साथ ही परीक्षा की तैयारी कर लिया करे। बालकिशन का यह आइडिया हम सबको खूब पसन्द आया और हमने तय किया कि हम सब उसे एक-एक विषय की तैयारी करा देंगे। जो जिस विषय में अच्छा हो!

हम लोगों ने ऐसा ही किया।

लेकिन अफसोस! हम सब तो पास हो गए, लेकिन तमाम मेहनत के बावजूद गणेशीलाल पास नहीं हो सका।

और फिर उसने स्कूल ही छोड़ दिया। अगले साल वह स्कूल में कहीं नज़र नहीं आया।

कोई साल भर बाद गणेशीलाल मुझे फिर नज़र आया। वह महात्मा गांधी मार्ग पर खड़ा एक ठेले में मिट्टी के गणेश बेच रहा था। उसके ठेले पर कोई पचासेक छोटे-छोटे एक जैसे गणेश रखे हुए थे।

मैं उत्साह और आश्चर्य में भरा उसके पास गया और बोला, “अरे गणेशीलाल!”

लेकिन गणेशीलाल ने मुझे देखकर ज़रा भी खुशी ज़ाहिर नहीं की। उसका चेहरा एकदम भावशून्य रहा, जैसे मुझे पहचानता ही ना हो। हाथ मिलाने या गले लगने की बात तो दूर, उसने ठीक से मुझे देखा तक नहीं।

मैंने कहा, “गणेशीलाल, तुमने स्कूल क्यों छोड़ दिया? क्या बात हो गई थी? एक बार फेल होने से क्या होता है? कम से कम हायर सेकेंडरी तो कर लेते यार! हम सब थे तुम्हारे साथ!”

उसने दो मिनिट तक मुझे कसकर घूरा और फिर अपना ठेला लेकर तेज़ी-से पासवाली गली में बढ़ गया। देखते-देखते वह मेरी नज़रों से ओझल हो गया।

क्या गणेशीलाल हमसे नाराज़ था? क्या उसे ऐसा लग रहा था कि उसे परीक्षा से पहले अपने साथ रखकर हमने उसे धोखा दिया? अपने घर रहता तो शायद फेल नहीं होता?

या क्या वह अपने आप से नाराज़ था? कि इतने अच्छे दोस्तों के साथ देने के बावजूद वह परीक्षा में कुछ नहीं लिख पाया और फेल हो गया? बल्कि थककर उसने स्कूल ही छोड़ दिया?

या वह उन परिस्थितियों से नाराज़ था जिन्होंने उसे दसवीं तक भी नहीं पढ़ने दिया और गली-गली गणेश बेचने पर मजबूर कर दिया?

पता नहीं!

पढ़े-लिखे को फारसी क्या!

वरुण ग्रोवर

उर्दू के मशहूर शायर थे मिर्ज़ा गालिब। उनके चाहनेवाले उन्हें गालिब चचा कहते हैं। उनकी शायरी पढ़-पढ़ के उनसे एक ऐसा रिश्ता बन जाता है कि उनके मुरीद (यानी फैन!) उनको गालिब साब या गालिब सर या सिर्फ गालिब कहें तो अधूरा-सा लगता है, इसलिए गालिब चाचा।

गालिब चचा का पैदायशी नाम था असद। बचपन में वे इसी नाम से जाने जाते थे। गुलज़ार साब, खुद को गालिब का मुलाज़िम (यानी नौकर) मानते हैं। उन्होंने अपने उस्ताद पर एक बड़ी खूबसूरत किताब लिखी है। किताब के शुरू-शुरू में ही असद के बचपन का एक मज़ेदार किस्सा है।

असद सड़क पर दोस्तों के साथ कंचे खेल रहा था कि एक बुज़ुर्ग उससे टकरा गए। असद ने गुस्से में कह दिया, "देखकर नहीं चलता बुढ़ऊ?" बुज़ुर्ग को गुस्सा आया और उन्होंने असद को डाँटा, "बुज़ुर्गों से ऐसे बात करते हैं?" असद ने तुरन्त पलटकर एक शेर में जवाब दिया

बुज़ुर्ग ब अक्ल अस्त न बसाल
आमिर ब दिल अस्त न बमाल

बुज़ुर्ग को कुछ पल्ले नहीं पड़ा और उसने कहा, "क्या?"

असद ने समझाया, "बुज़ुर्ग कोई अक्ल से होता है, उम्र से नहीं। जैसे अमीर कोई दिल से होता है, माल (पैसे) से नहीं।"

बुज़ुर्ग का गुस्सा तो शान्त नहीं हुआ लेकिन सोचनेवाली बात ये है कि बहुत बचपन से ही गालिब चचा को फारसी पढ़ने का शौक था। शेख सादी का यह शेर उसकी मिसाल है। आगे चलकर गालिब चचा ने हज़ारों शेर लिखे - जिनको जोड़कर उनकी गज़लें बनीं और गज़लों/शेरों का संग्रह दीवान कहलाता है।

गालिब चचा का फारसी भाषा से प्रेम इस कदर था कि उन्होंने बच्चों को फारसी सिखाने तक के लिए नज़्में (कविताएँ) लिखीं। उन्हीं में से एक यहाँ पेश है। उर्दू/फारसी शायरी का एक कायदा है कि सुनने से पहले "इरशाद" कहा जाता है। और सुनने के बाद (अगर पसन्द आए तो) "वाह!" और अगर इतनी पसन्द आए कि दोबारा सुननी हो तो कहते हैं "मुकर्रर!" सो तुम भी इरशाद कहो और पढ़ो। गालिब चचा की ये फारसी सिखाने की कविता।

तेग़ की हिन्दी अगर तलवार है
फ़ारसी पगड़ी की भी दस्तार है

नेवला रासु है और ताऊस मोर
कबक को हिन्दी में कहते हैं चकोर

खुम है मटका और थलिया है सुबू
आब पानी, बेहर दरिया, नहर जू

चाह को कहते हैं हिन्दी में कुआँ
दूद को हिन्दी में कहते हैं धुआँ

दूध जो पीने का है वह शीर है
तिफ़्ल लड़का और बूढ़ा पीर है।

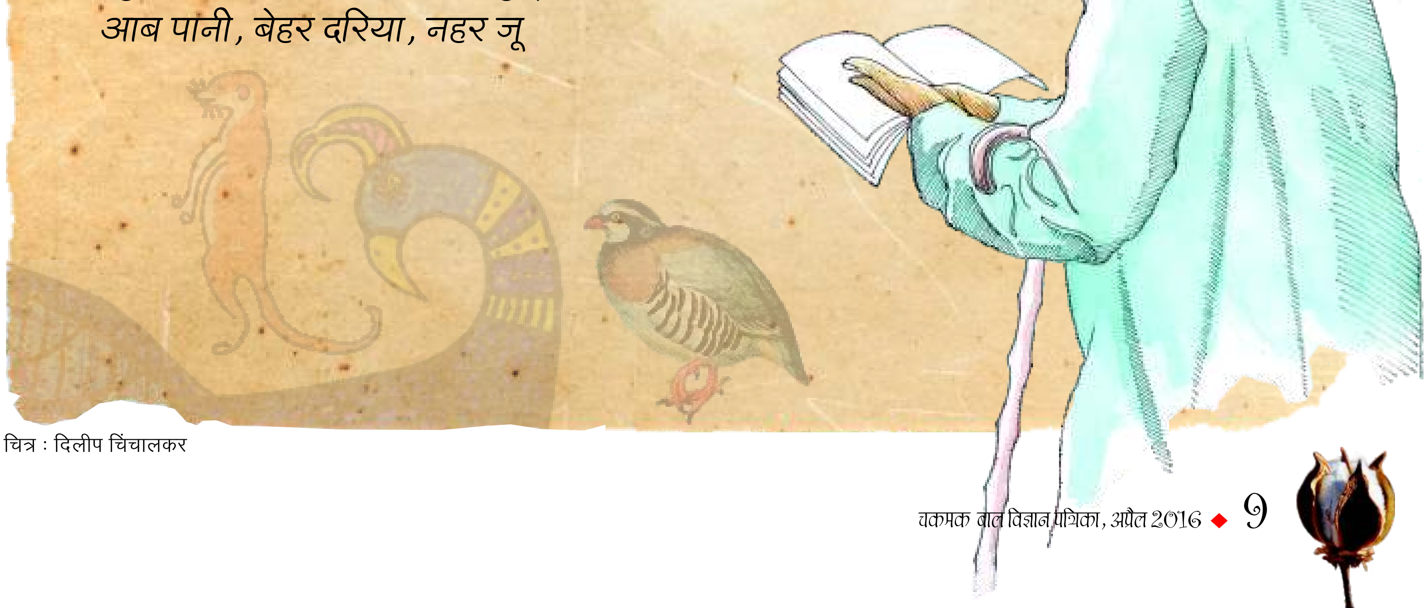

चित्र : दिलीप चिंचालकर

झोली तो दिखाओ

प्रभात

घूमते आए हो
बड़े झूमते आए हो
झोली तो दिखाओ
क्या-क्या बीनते लाए हो

लाए तो थे चाँद सूरज
वहीं भूल आए
ढेर सारे तारे
नभ में ही छोड़ आए

चाँद सूरज तारे
कोई बात नहीं छोड़े
इतनी दूर गए थे
बादल तो लाते थोड़े

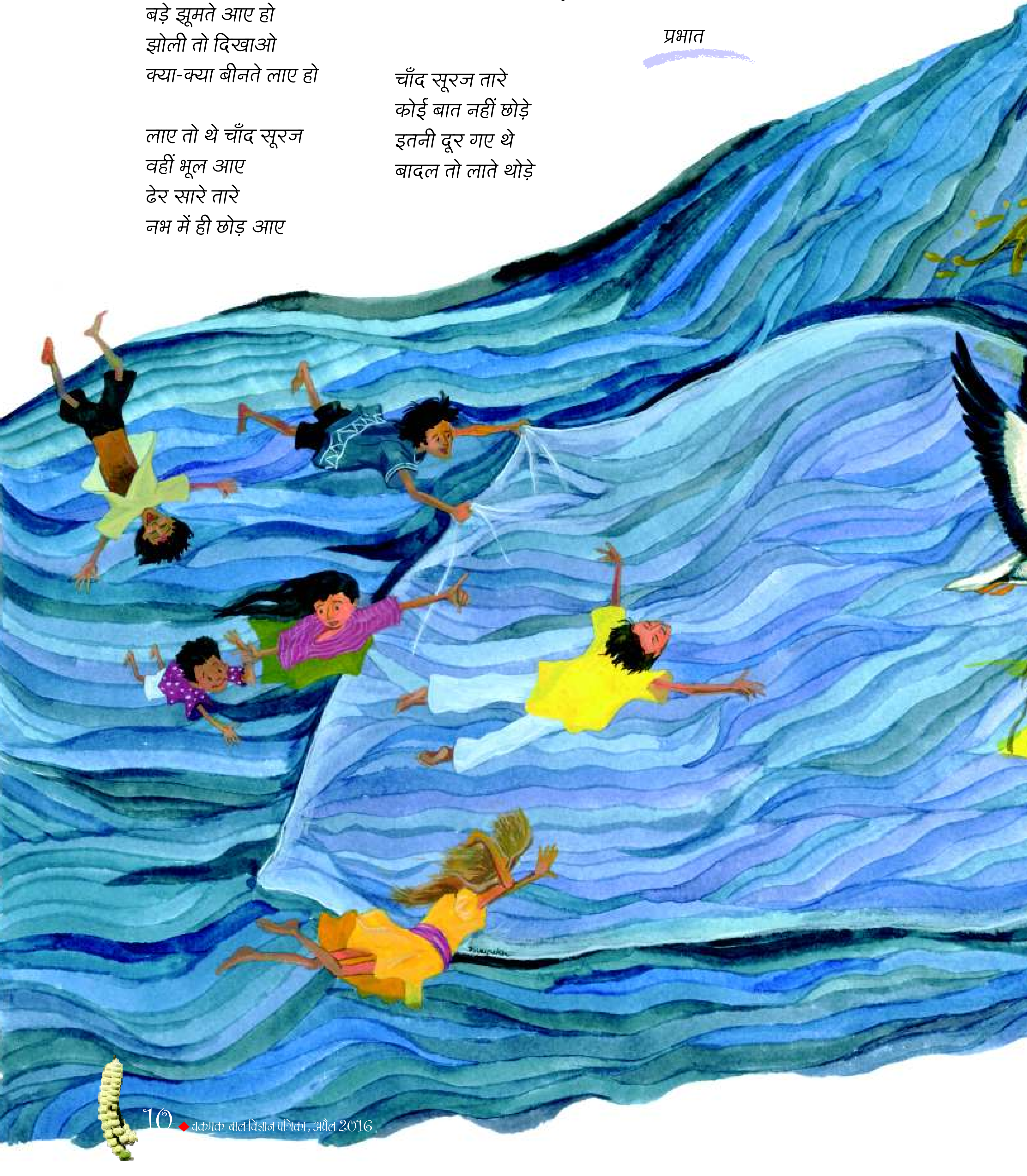

चित्रः मयूख घोष

घूमते आए हो
बड़े झूमते आए हो
झोली तो दिखाओ
क्या-क्या बीनते लाए हो

तीन घने जंगल
पोटली में रख लिए थे
चार नदियों के किनारे
बाँधकर रखे थे

जंगलों को लेकिन
शेर भालू ही ले भागे
रास्ते में मुड़ गई नदियाँ
चल रही थीं आगे

नदी शेर जंगल
कोई बात नहीं छोड़े
इतनी दूर गए थे
झरने तो लाते थोड़े

घूमते आए हो
बड़े झूमते आए हो
झोली तो दिखाओ
क्या-क्या बीनते लाए हो

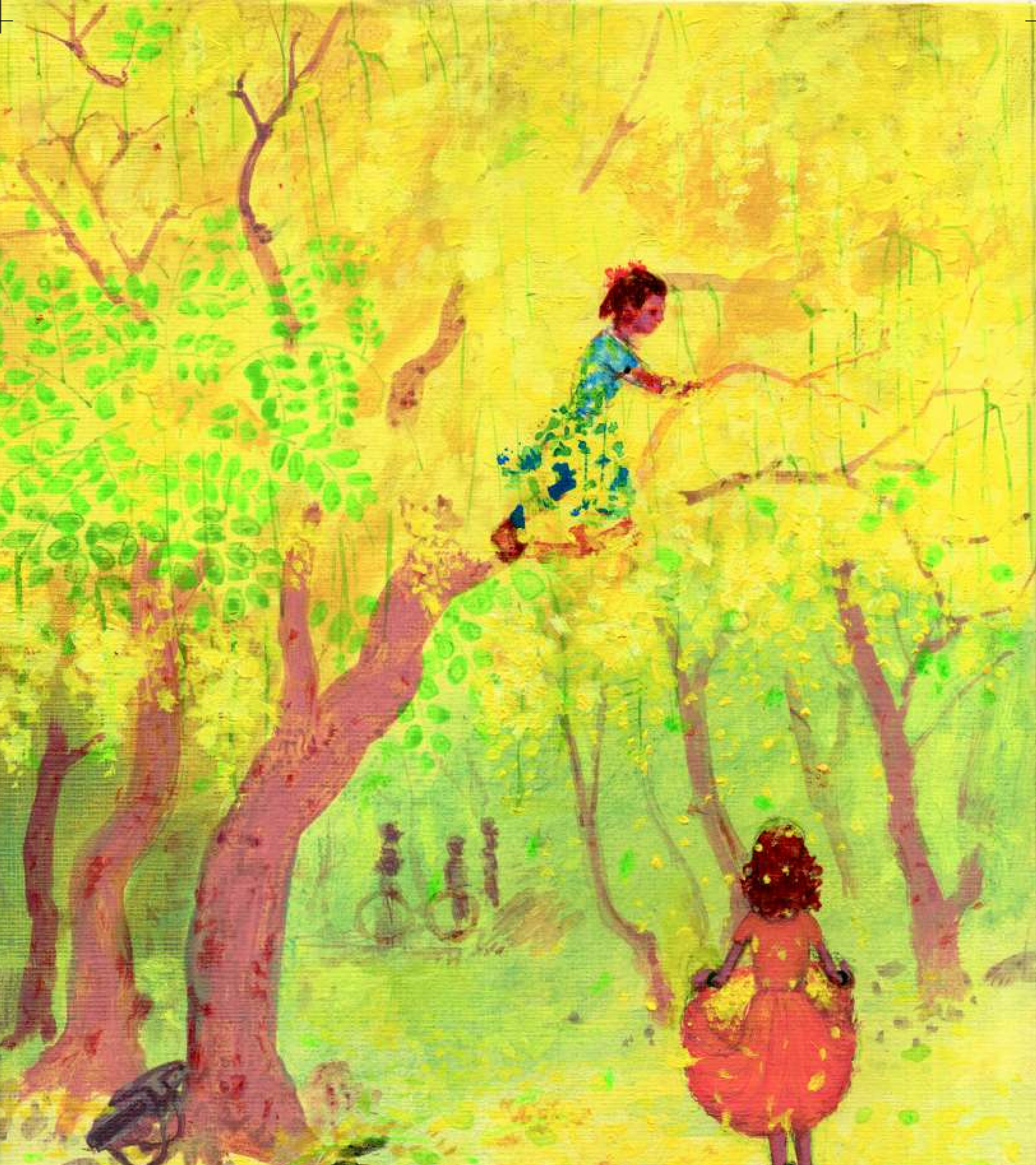

प्रेम जैसा अमलतास का पेड़ धूप से करता है।
वह धूप से कहता है –
“सुनो, तुम्हारा पीला रंग मुझे बहुत पसन्द है। इन दिनों तुम ज़रा गुस्से में हो
पर तुम्हारी गरमाहट मुझे बेहद अच्छी लगती है। मैं रोज़ सुबह तुम्हारा इन्तज़ार करता हूँ।”

अमलतास, गाँधीजी और अहिंसा

शम्पा शाह

वह मई की एक आग उगलती दोपहरी थी। दूर-दूर तक जली हुई सी सूखी घास, इक्का-दुक्का पेड़ और तपती हुई काली चट्टानें। कहीं कोई आवाज़ नहीं। जीवन का कहीं कोई नामोनिशान नहीं। एक चिड़िया तक नहीं। चारों ओर फैला एक डरावना उजाड़। तभी मेरी नज़र उस पर पड़ी सुबह की उजली धूप में नहाता हुआ-सा एक पेड़। और फिर जैसे उसने सर से पाँव तक उस पीली मुलायम धूप को ही पहन लिया था अमलतास!

अचानक से मेरा गुस्सा और मेरी हताशा खत्म हो गई जिसने हफ्ते भर से मुझे दबोच रखा था। मेरे मन में एक ऐसी बात आई जिससे मन एकदम हलका हो आया – अमलतास के फूल-सा। मुझे लगा जैसे मैंने गाँधीजी के अहिंसा के विचार को साक्षात मूर्त रूप में देख लिया हो। मेरे लिए अहिंसा का जैसे नए सिरे से एक अर्थ खुला था। अहिंसा यानी मई की तपती दोपहरी में अमलतास का खिलना मन में आया हो कि हो न हो, गाँधी जी को अहिंसा का मंत्र झुलसा देने वाली धूप में प्रसन्न खड़े अमलतास के ऐसे ही किसी पेड़ से मिला होगा।

बचपन में हमारे स्कूल में एक फिल्म दिखाई गई थी – *बापू ने कहा था सच बोलो।* फिल्म में बच्चे ही मुख्य किरदार थे, इसके अलावा अब अधिक मुझे कुछ याद नहीं है। सिर्फ इतना याद है कि फिल्म जब खत्म हुई तो एक भी बच्चा ऐसा नहीं था जो रो न रहा हो सारे बच्चे कक्षा की दीवारों और बस्तों में मुँह छुपाए ज़ोर-ज़ोर से रो रहे थे। शायद हम में से सभी को वह दिन, वह फिल्म लम्बे समय तक याद होगी। मैंने घर आकर माँ से गाँधीजी के बारे में पूछा था और उन्होंने बड़े उत्साह से मूल गुजराती में उनकी आत्मकथा पढ़कर सुनाना शुरू कर दी।

उस सात-आठ बरस की उम्र में शायद गाँधीजी की बचपन की घटनाएँ ही माँ ने पढ़कर सुनाई होंगी। मुझे उस आमवाली घटना को समझने में बहुत मुश्किल हुई थी। बालक गाँधी के उस साल आम न खाने के फैसले से मैं सन्न रह गई और एक बार फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी थी। मुझे उनका यह निर्णय खुद के और उनकी माँ के प्रति बहुत कठोर लगा था। मुझे यह भी लगा था कि ऐसा मैं नहीं कर सकती।

लेकिन यह मामला बचपन तक ही सीमित नहीं रहा। अभी तक यही हाल है कि गाँधीजी का कुछ पढ़ते-सुनते-देखते ही रुलाई छूटने लगती है। मुझे लगता है कि हम बहुत बार गाँधीजी के कहे और किए से इसलिए भी बचते हैं क्योंकि, न जाने क्यों वह हमें रुला डालता है।

फिर भी यह सोचना होगा कि गाँधीजी की बताई राह और उससे जुड़ी घटनाएँ रुलाती क्यों हैं? और इसी के साथ, यह प्रश्न भी पूछना चाहिए कि क्या रोना इतना बुरा है?

खुद के फायदे-नफे को त्याग, दस मुसीबतें झेलकर दूसरे के लिए किए काम हमें रुलाते ही हैं। वे शायद हमें याद दिलाते हैं कि हमारा असली रूप यही है या कि ऐसा ही होना चाहिए था या कि होना चाहिए। इसका मतलब हुआ कि हमें रोना दूसरे के त्याग या कष्ट को देखकर नहीं आता। बल्कि, वह जो आईना बन हमें हमारी सूरत दिखा गया है, हमें उस पर रोना आता है। हमें अपने इस हाल पर रोना आता है कि ठण्ड में ठिठुरते बच्चे को देख अपना स्वेटर उतारकर देने का ख्याल जो बचपन में आता था – वह हमारे भीतर का बच्चा हमसे कब बिछुड़ गया – वह हमारे भीतर का मैं जो दूसरे की ठिठुरन को

चित्रः नीलेश गहलोत

आम का किस्सा...

कहते हैं एक बार गाँधीजी ने अपने एक दोस्त को आम की दावत पर घर बुलाया। माँ ने दोनों को आम दिए। आम गाँधीजी को बहुत पसन्द थे। अचानक उनका ध्यान गया कि माँ ने उनके दोस्त के सामने थोड़े-से आम रखे हैं। और उन्हें ज़्यादा और अच्छी किस्म के आम दिए हैं। गाँधीजी को लगा कि माँ उन्हें प्यार करती हैं शायद इसलिए ऐसा कर रही हैं। उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी। और उस पूरे मौसम उन्होंने आम नहीं खाए।

महसूस कर पाता था? हमें अपना वह झूठ भी साफ दिखाई दे जाता है जब हम ठिठुरते बच्चे को देख खुद से कहते हैं – एक बच्चे को स्वेटर दे भी दिया तो क्या होगा। हज़ारों बच्चे ठिठुर रहे हैं – यह तो हमारी व्यवस्था की गड़बड़ी है।

इस बात में सच्चाई ही नहीं है ये बात नहीं किन्तु, इसमें एक झूठ भी छिपा बैठा है। जब फिल्म में कोई बच्ची एक ज़ख्मी हत्यारे के ठीक होने के लिए मन-प्राण से प्रार्थना करती है तो हॉल में बैठे हुए हम सब रो पड़ते हैं।

हम दरअसल खुद पर रोते हैं कि हमें ऐसा प्यार करना क्यों नहीं आया? क्यों हमें घर में, स्कूल में किसी ने मनुष्य मात्र से, जीव मात्र से ऐसा प्रेम करना नहीं सिखाया? निडर, अकारण, अहेतुक प्रेम। ऐसा प्रेम जैसा अमलतास का पेड़ धूप से करता है। वह धूप से कहता है, “सुनो, तुम्हारा पीला रंग मुझे बहुत पसन्द है। इन दिनों तुम ज़रा गुस्से में हो पर तुम्हारी गरमाहट मुझे बेहद अच्छी लगती है। मैं रोज़ सुबह तुम्हारा इन्तज़ार करता हूँ।”

फूले हुए अमलतास को देख क्या कभी ऐसा लगा कि धूप बहुत तेज़ झुलसाने वाली है? छुट्टियों और आईसक्रीम के अलावा क्या हम गर्मियों का इन्तज़ार इसलिए भी नहीं करते क्योंकि धरती-आकाश के बीच तब यह पीले फूलों का झरना बहता है?

हाँ, तो उस रोज़ मुझे लगा था कि गाँधीजी ने अहिंसा रूपी औज़ार तपती दोपहरी में फूले अमलतास को देखकर पाया था। एक ऐसा औज़ार जो चाहने पर सबके पास हो सकता है। मनुष्य की एक परिभाषा यह भी है कि “मनुष्य एक औज़ार बना सकनेवाला जीव है।” सबसे पहले औज़ार उसने पत्थर से बनाए – छीलने, काटने, सिलने आदि के लिए। फिर उसने भाले, तलवार, बन्दूक, मिसाइल और परमाणु बम बना लिए। यह कितनी अजीब बात है कि सुई, चाकू, हथौड़ी, सण्डसी भी औज़ार हैं और मिसाइल-बम भी। जब औज़ार मदद और सहूलियत की बजाय नुकसान और बर्बादी के लिए बनने लगें, जब वे भाई-चारे की बजाय नफरत फैलाने के लिए हों तो फिर किसी को तो उस औज़ार के बारे में सोचना पड़ेगा जिससे किसी का नुकसान सम्भव ही न हो। नहीं, अहिंसा का विचार गाँधीजी की इजाद नहीं थी। अहिंसा का विचार बहुत पहले से सभी समाजों, सभी धर्मों में किसी न किसी रूप में मिलता है। गाँधीजी से पहले अमरीका के मूल निवासियों ने अँग्रेज़ों की उन बातों को मानने से (हू-ब-हू गाँधी जी की “सविनय अवज्ञा” की तर्ज़ पर) इंकार कर दिया था जो उनके अनुसार प्रकृति के खिलाफ थीं। उन रेड इण्डियंस, गाँधीजी और अमलतास की अहिंसा में बहुत समानता है। ये तीनों ही अपने दुश्मन के प्रति मन, वचन और व्यवहार में हिंसा न करने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते। गाँधी कहते हैं कि हमें अपने दुश्मन से वैसा ही प्यार करना होगा जैसा हम खुद से करते हैं। यदि हम दुश्मन को प्यार करेंगे, तो फिर वह हमारा दुश्मन रह ही कहाँ जाएगा? गाँधीजी कहते हैं कि कोई यदि गलत बात या काम कर रहा हो तो उसका पुरज़ोर विरोध करना है। गलत बात को सहना, उसके खिलाफ आवाज़ न उठाना कायरता है (यह तो बहुत से लोग कहते हैं) लेकिन, गाँधीजी और अमलतास का कहना है कि इस विरोध को प्रेम से सराबोर होना चाहिए। गाँधीजी के लिए अहिंसा प्रेम का पर्याय है। ऐसा प्रेम जैसा अमलतास का पेड़ मई की धूप से करता है।

पवित्रता का एक क्षण, आपकी प्रतीक्षा में
सिंहस्थ
कुंभ महापर्व उज्जैन
22 अप्रैल-21 मई, 2016
D77999 8 मार्च 2016
आस्था एवं अध्यात्म के एक दिव्य संसार का अनुभव करने उज्जैन अवश्य पधारिये.
शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश
देश काल से परे का एक अदभुत अनुभव जो आता है बारह वर्षों में
उज्जैन तैयार है
श्रद्धालुओं के स्वागत के लिए।
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
www.simhasthujjain.in /SimhasthUjjain2016 /Simhasth

चौकलेट

सोनिका दीदी ने मुझे चौकलेट दी।
वह मेरे हाथ जितनी बड़ी है। मैं उसे अभी
नहीं खाऊँगी। क्यूँकि अगर मैंने उसे
अभी खा लिया तो मैं उसका मज़ा बाद में
नहीं ले पाऊँगी। लेकिन जब बाद आ
जाता है, तो मैं फिर से सोचती हूँ कि
अभी नहीं, बाद के लिए बचा कर रखती
हूँ।

सोनिका दीदी के चौकलेट दिये हुए आठ
दिन हो गये हैं। मुझे तो खुद विश्वास
नहीं हो रहा कि मैंने चौकलेट अभी तक
नहीं खायी है।

रात को सोने से पहले मैं सोचती हूँ,
कल खा लूँगी।

शामली, 12 साल, हिमाचल प्रदेश

चित्रः सौम्या शुक्ला

अब कल नहीं रहा। वह आज बन गया है। तब भी नहीं रहा। वह अब बन गया है। चौकलेट मेरी जेब में है। सोनिका दीदी मेरे साथ हैं। मैं चौकलेट को जेब से निकालती हूँ। अरे! यह क्या! चौकलेट का पैकेट खुला हुआ है। मैं प्लास्टिक हटाती हूँ। अंदर चौकलेट नहीं मिलता है। मुझे तुरंत पता चल जाता है कि चौकलेट मेरे भाई ने खा ली है। मैं रोने लगती हूँ। सोनिका दीदी को

दुख नहीं हो रहा। वह तो मुस्कुरा रही हैं। वह अपनी जेब से एक चीज़ निकालती हैं। चौकलेट! वह उसे खोलती हैं और दो टुकड़े करती हैं। हम दोनों उसे आज और अभी खा जाते हैं।

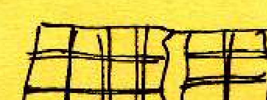

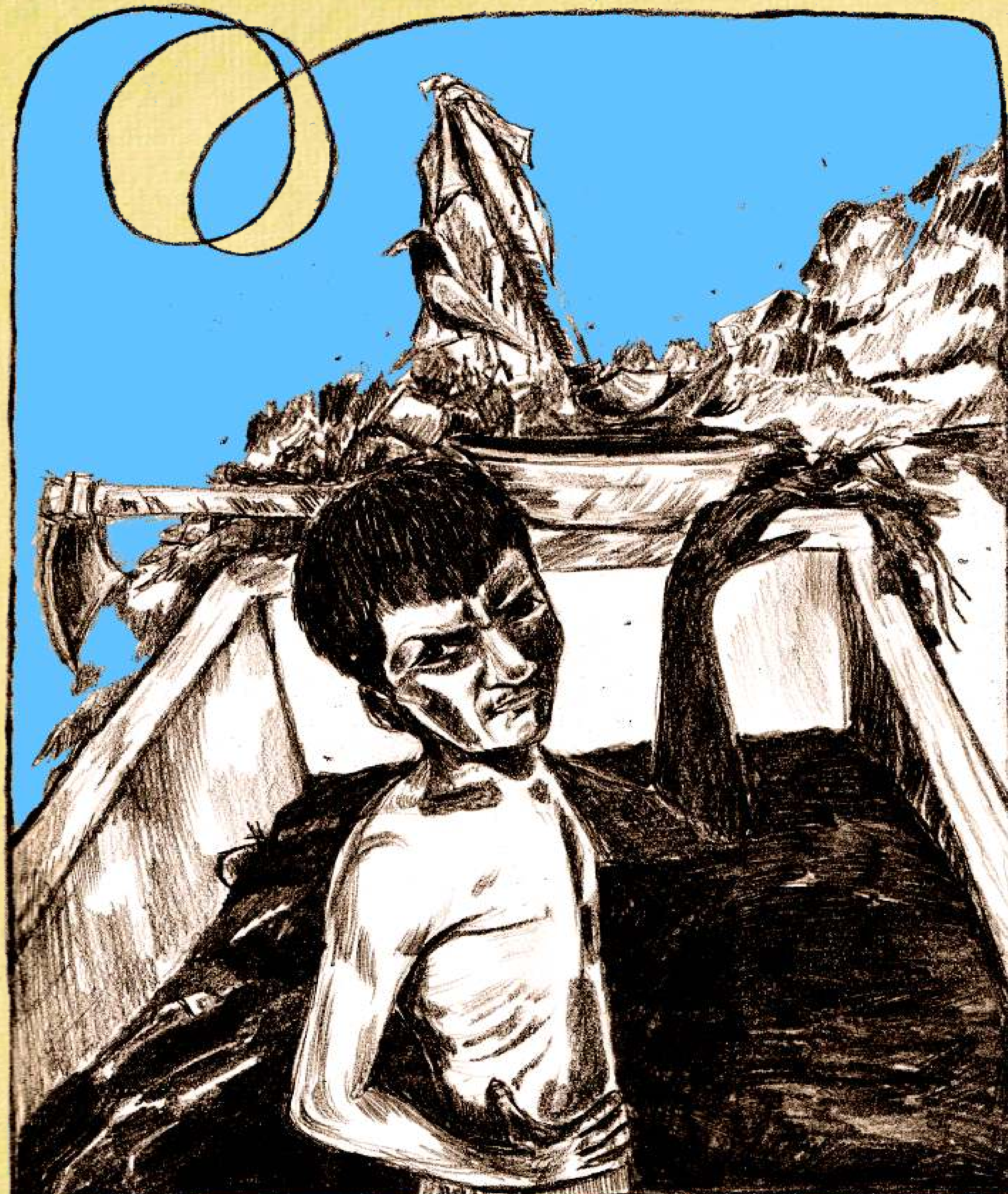

मँगरू बाँसफोर

कहते हैं हमारा देश हर क्षेत्र में बड़ी तरक्की कर रहा है। हमारा रहन-सहन बदल रहा है। इस तरक्की पसन्द देश में एक नौजवान भी रहता है, मँगरू बाँसफोर। सफाई कर्मचारी मँगरू नगरपालिका में काम करता है। सुबह 7:30 बजे भागा-भागा वह नगर पालिका के दफ्तर पहुँचता है। वहाँ बताया जाता है कि शहर की किस-किस जगह का कचरा उसे साफ करना है। वह अपने कामगार संगी-साथियों के साथ हो लेता है।

मँगरू और उसके तीन दोस्त ट्रैक्टर पर सवार होकर शान से निकलते हैं। वे शहर के बाज़ार में पहुँचते हैं। वहाँ कचरे का पहाड़ उनका इन्तज़ार कर रहा है। कचरे को ट्रैक्टर पर लादने के लिए उनके पास कुदाल, बेलचा और काँटेदार कुदाल हैं। जब मँगरू कुदाल से कचरे को हिलाता है तो ऐसी बदबू उठती है कि पास के दुकानदार और खरीददार अपनी नाक दबा लेते हैं। वहाँ साँस लेना दूभर हो जाता है। लेकिन मँगरू और उसके साथियों को तो कचरा उठाना ही है।

समय कम है काम बहुत हैं। बिना रुके वे कचरे को ट्रैक्टर में लादते हैं। अचानक एक पुरानी कील मँगरू के तलुए के आर-पार हो जाती है। मँगरू किसी तरह अपनी चीख को ज़ब्त कर कील खींच लेता है। और पास पड़े एक मैले कपड़े को अपने लहूलुहान पैर पर बाँधकर फिर काम में लग जाता है।

दोपहर तक कई जगहों से कचरा उठाने के बाद वो थका-हारा घर पहुँचता है और कुछ खा-पीने के बाद दो बजे वापस काम पर निकल जाता है।

शाम को घर लौटते वक्त किराने की दुकान जाता है। दुकानदार की गालियाँ सुनते-सुनते, मुस्कराते हुए हाथ-पैर जोड़कर उससे दाल-चावल माँगता है। उसकी बीबी भी अपने काम निपटाकर अभी-अभी घर आई है। घर में बीबी के हाथ दाल-चावल थमाकर लड़खड़ाते कदमों से वह कहीं चल देता है। क्या पता शायद वह शराब पीने जा रहा हो। रास्ते में कुछ संगी-साथी भी मिल जाते हैं। वह अब शायद आधी रात को घर लौटे। लड़खड़ाते हुए।

कुछ इस तरह बीतता है मँगरू का एक दिन। लेकिन यह अकेले मँगरू का एक दिन नहीं है। यह जीवन कई-कई सफाई कर्मचारियों का है। सारा दिन बदबू, गन्दगी में उतरकर उसे साफ करते-करते जैसे वह उनके दिलो-दिमाग में बैठ जाती है। हाथ-पाँव ज़ख्मी होते जाते हैं। बदन दर्द से टूटता रहता है। शायद किसी ऐसी ही घड़ी में वे शराब का सहारा लेते होंगे। नशे में थोड़ी देर के लिए सारी दुर्गन्ध और तकलीफ से निज़ात मिल जाती होगी।

नगरपालिका से मिला वेतन कुछ ही दिनों में खत्म हो जाता है। बाकी का महीना उधारी से ही काटना है। इस नौकरी के सहारे वो अपने बच्चों को कैसे पढ़ा पाते होंगे? दूसरे बच्चे स्कूल जाते हैं। पढ़ते हैं। सपने देखते हैं। तमाम नौकरियाँ करते हैं। और मँगरू के बच्चे? वे उसकी तरह ही पिछड़ जाते हैं।

मँगरू जैसे सफाई कर्मचारी समय से पहले ही बूढ़े हो जाते हैं। टीबी, कैंसर जैसी बीमारियों की जकड़ में आ जाते हैं। फिर एक दिन उनके बच्चे उनकी जगह लेने किसी नगरपालिका पहुँच जाते हैं। जिन हाथों में किताबें होनी चाहिए उनमें कुदाल होता है। जैसे मँगरू बार-बार पैदा होता है। बार-बार ठीक वैसे ही मर जाता है। एक ही ज़िन्दगी बार-बार।

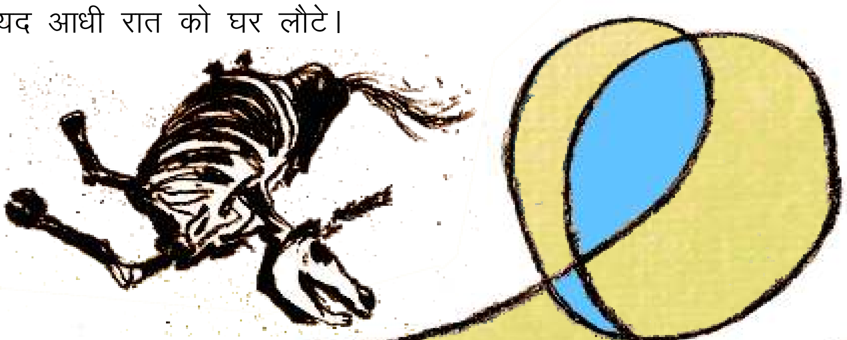

प्रस्तुतिः विवेक मेहता

चित्र - कनक शशि

ऑपरेशन थियेटर

अलीशा

रात को सोने से पहले वह अपनी मम्मी के पास गई और बोली, "मम्मी क्या सब वैसा का वैसा ही होगा या सब कुछ बदल गया होगा?" उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए मम्मी बोली, "मैं भी तो यही जानना चाहती हूँ क्योंकि मैं तेरे ही साथ जाती हूँ।" जब मम्मी ने यह बात कही तो उसे लगा कि उसकी वजह से मम्मी को अस्पताल के कितने चक्कर काटने पड़ रहे हैं। उसने मम्मी से पूछा, "ज़्यादा दर्द तो नहीं होगा?" मम्मी पहले हँसी फिर बोली, "तुझे बस ऐसा लगेगा कि चींटी ने काटा है। उसके बाद दर्द खत्म हो जाएगा।"

"फिर क्या होगा?"

"उसके बाद हम दोनों आइस्क्रीम खाने चलेंगे!" हँसते हुए उसकी मम्मी ने कहा। यह सुन वह भी हँस पड़ी।

क्या होगा, कैसे होगा, सोचते हुए वह अस्पताल पहुँची। वहाँ भीड़ देखकर उसका सिर चकराने लगा। मम्मी उसे सम्भालते हुए दूसरे गेट से अन्दर ले जा रही थीं और धीमी आवाज़ में कह रही थीं कि थोड़ी ढीली हो जा, क्या पता तबीयत ज़्यादा खराब देखकर तुझे पहले देख लें। कहने भर की देर थी कि वह सिर पकड़कर "आ... आ..." करने लगी।

साइड में कतार से कुर्सियाँ लगी हुई हैं। दूसरी ओर काउंटर हैं। लोगों की हालत देखकर उसका मन खराब होने लगा। कोई बिना चादर ओढ़े औंधा पड़ा है, कोई पाइपों में लिपटा पड़ा है। एक आदमी का चेहरा उसके बाल और आँखों को छू रहा है। आँखें गहरी कशमकश में है, नाक लम्बी है। उसमें पाइप लगा हुआ है। गाल अन्दर धँसे हुए हैं। होंठ एक तरफ से मोटा दूसरी तरफ से पतला है। हाथों में भी पतले पाइप लगे हैं। एक लेडी काउंटर से पर्ची बनवाते हुए उस आदमी को देख रही है। वह स्ट्रेचर पर मुँह खोले लेटा है।

उसकी मम्मी भी काउंटर से पर्ची बनवाकर आगे चल दीं। वह परछाईं की तरह उनके पीछे-पीछे चल पड़ी। फिनाइल और दवाइयों की गन्ध उसे वहाँ से भाग जाने को कह रही है। मम्मी भीड़ को चीरती हुई कमरा नम्बर अस्सी ढूँढ रही हैं। तभी एक नर्स मिली। मम्मी ने बड़े प्यार से उसे रोकते हुए पूछा, "जी आप बता सकती हैं कि रूम नम्बर अस्सी कहाँ होगा?" "अस्सी! यानी ऑपरेशन थियेटर।" यह सुनकर उसके पैरों तले की ज़मीन खिसक गई। पैर पीछे खिसकने लगे।

मम्मी ने झट-से उसका हाथ पकड़ा और कमरा नम्बर अस्सी में ले गईं। उसे डर लगने लगा कि कहीं आज ही ऑपरेशन न कर दें! कमरे में अँधेरा है और लाइन से रखी कुर्सियाँ हैं। उसे एक कुर्सी पर बैठाकर मम्मी पर्ची लेकर अन्दर चली गईं।

चर्र की आवाज़ के साथ दरवाज़ा खुला। मम्मी बाहर निकलीं और बोलीं, "चल तुझे अन्दर बुलाया है। चप्पल उतार दे।" मम्मी ने फिर से ज़ोर लगाकर दरवाज़ा खोला। दरवाज़े के पास एक डस्टबिन रखा है। उसी के साइड में बहुत से बन्द डिब्बोंवाली एक रैक रखी है। अन्दर घुसते ही एक डॉक्टर मिली। उन्होंने मम्मी को बाहर जाने को कहा। मम्मी जब अपना हाथ छुड़ाकर बाहर जाने को हुईं तो उसने हाथ तेज़ी-से पकड़ा और कहा, "मम्मी, प्लीज़ आप मत जाइए। मुझे डर लग रहा है।" पर वह चुपचाप बाहर चली गईं।

आगे का रास्ता उसे अकेले तय करना है। सामने बड़ी-सी स्क्रीन है जिसके नीचे तीन-चार कम्प्यूटर रखे हैं। कुछ डॉक्टर उन पर काम कर रहे हैं। तभी डॉक्टर ने उसे एक बड़ा-सा गाउन देते हुए कपड़े

बदलने को कहा। वह हकबकाती हुई अन्दर गई। साइड में तीन-चार नल लगे हैं जिनसे पानी टपक रहा है। वहाँ खून से सने बड़े-बड़े तार पड़े हैं।

उसने जल्दी-जल्दी गाउन पहना और दूसरे गेट से बाहर निकल गई। सामने एक बड़ा-सा मशीनी बेड है और उसके ठीक ऊपर कुछ स्क्रीन और मशीन हैं। टू टू टू... की आवाज़ आ रही है। वह उस बेड पर जाकर बैठ गई। सामने बहुत से खानोंवाली अलमारी है जिसमें हर रंग के इंजेक्शन रखे हैं। साइड में एक छोटा कम्प्यूटर है जिसमें कुछ नहीं दिख रहा है, बस काली स्क्रीन पर झर्रर... झर्रर हो रही है। लेडी डॉक्टर ने उसे बेड पर लेटने को कहा। उनके हाथ में एक इंजेक्शन है जिसे लेकर वह कभी इधर कभी उधर हो रही है। चप्पलों पर पन्नी चढ़ी है। सिर पर कपड़े की टोपी है। वह उल्टी लेटी यह सब देख रही है।

एक डॉक्टर आए और लेडी डॉक्टर से थोड़े गुस्से में बोले, "लाओ इंजेक्शन! अरे मशीन कहाँ है? देखो उधर है, जल्दी इधर लाओ!" उनके माथे पर त्यौरियाँ चढ़ी हैं। नाक गुस्से से फूली हुई है। साइड में खड़ी डॉक्टर ने पूछा, "एनी प्रोब्लम सर?" "अरे किरन, क्या बताऊँ! मिश्रा जी ने सारा मूड खराब कर दिया। वो मेरे पैसे देने को राज़ी नहीं हैं।" बात को बीच में काटते हुए वह बोलीं, "सर यह पेशंट है....।" डॉक्टर दस्ताने पहनते हुए बोले, "अच्छा-अच्छा यही है जिसके बारे में आप बता रही थीं।"

डॉक्टर ने उस पर एक नीला जैल डाला और काली स्क्रीन पर कुछ खोजने लगा। सामने एक बड़ा शीशा लगा है जिसमें से वह सब देख रही है। वे सब उस झर्रर... झर्रर स्क्रीन पर कुछ तलाश रहे हैं। तभी उन्होंने एक इंजेक्शन में से नीली दवाई को पिच्च करके बाहर निकाला और बोले, "हाथ मत हिलाना बेटा। थोड़ा-सा दर्द होगा!"

उसने दोनों हाथों से तकिए को पकड़ लिया। सामने से नर्स आई और उसके दोनों हाथ हटाते हुए ढीला रहने को बोली। डॉक्टर ने सुई लगाई, वह चीख पड़ी, "मम्मी, आ... मम्मी बहुत दर्द हो रहा है। मम्मी आओ....।" डॉक्टर ने कब सुई निकाली, आगे क्या हुआ उसे पता ही नहीं चला।

चित्रः मयूख घोष

नर्स ने टेप लगाई और बाहर से उसकी मम्मी को बुला लाई। मम्मी उसे उठाकर चेंजिंग रूम में ले गईं। उसके कपड़े बदले। लेडी डॉक्टर ने पर्ची पर रिपोर्ट लिखकर दी और अगले महीने आने को कहा। दर्द से कराहते हुए वह ऑटो में बैठकर घर की ओर रवाना हो गई।

अलीशा, दक्षिणपुरी दिल्ली में रहती हैं। अंकुर संस्था से जुड़ी हैं। यह उनकी डायरी का एक पन्ना है...

चींटियों की दावत

विनता विश्वनाथन

चींटियाँ हर वक्त खाने की तलाश में घूमती-फिरती रहती हैं। कभी कोई चींटी अकेली दिख जाती है तो कभी दो-चार के साथ में। मरे कीड़े, बीज, फूलों का रस, मीठे फल, उन्हें भाते हैं। मर्ज़ी का जो कुछ मिलता है तो वे पहले देखती हैं कि खाना है कितना! बहुत सारा हो तो बाम्बी से साथियों को बुलाने दो-चार चींटियाँ निकल पड़ती हैं और बाकी उस खाने को इकट्ठा कर बाम्बी में ले जाने की तैयारी करती हैं। अगर खाना थोड़ा-सा ही है तो एक-दो उसे समेटने लगती हैं और बाकी तलाश में आगे बढ़ जाती हैं। चींटियों को किस तरह का खाना पसन्द है, यह हम खुद पता कर सकते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि शहरी चींटियाँ जंक फूड पसन्द करती हैं। तुमको क्या लगता है, चींटियों को क्या भाता होगा? चलो आज़माते हैं...

प्लास्टिक की एक थाली या कार्डबोर्ड की शीट पर एक चम्मच शहद, आलू के चिप्स, चावल, उबले अण्डे का एक टुकड़ा, मरा हुआ कोई पतिंगा या इल्ली, ऐसी कोई चार-पाँच चीज़ें एक-दूसरे से कुछ दूरी पर रख दो। फिर अपने आँगन या बगीचे में चींटियाँ ढूँढो। कतार में चलती हुई कुछ चींटियाँ दिख जाएँ तो उनके पास दावत बिछा दो। फिर आराम से कहीं बैठकर देखो कि आगे क्या होता है।

- चींटियाँ कितना समय लेती हैं प्लास्टिक या कार्डबोर्ड तक पहुँचने में?
- सबसे पहले कौन-से खाने पर पहुँचती हैं?
- पाँच मिनट बाद कौन-से खाने पर सबसे ज़्यादा चींटियाँ दिखती हैं? गिनो कि एक मिनट में कितनी चींटियाँ उस खाने पर आती दिखती हैं?
- क्या किसी खाने को खत्म कर देती हैं?
- शुरू में कितनी चींटियाँ थीं? दो मिनट में कितनी चींटियाँ आती हैं?
- तुमको क्या लगता है – जिस खाने पर सबसे ज़्यादा चींटियाँ दिखती हैं, उनको वही क्यों पसन्द होगा?
- अलग-अलग किस्म की चींटियाँ अलग-अलग किस्म के खाने पसन्द करती हैं या नहीं, इस बात को भी तुम करके देख सकते हो।

चींटियों के आसपास अकसर अन्य चींटियाँ मिलती हैं। तो बस थोड़ी सावधानी बरतना – कुछ किस्म की चींटियाँ जब काटती हैं तो बहुत दर्द व जलन होती है।

एक बैगा गीत

चींटिक सेना

चींटिक सेना हवयंदाला भारे
लिखन भर नहीं आए।

कौन भइया कागज भरै
कौन बहिना पोथी
कौन भइया कलम चलावे
लिखन भर नहीं आए।

बड़े भइया कागज भरै
छोटी बहिना पोथी
मँझले भइया कलम चलावे
लिखन भर नहीं आए।

चींटियों के दल

चींटियों के दल ऐसे भारी
कि लिखने में नहीं आए

कौन भाई कागज़ लाए
कौन भाई गिनता जाए
कौन बहना कलम चलाए
कि लिखने में नहीं आए

बड़े भैया कागज़ लाए
छोटे भैया गिनते जाए
मँझली बहना कलम चलाए
कि लिखने में नहीं आए

चित्रः आशिका हरभंजका

नेगफायर संस्था से साभार

माघ के मेघ और चाँद

पद्‌मजा गुनगुन

चित्र: नीलेश गहलोत

पौष महीना पूर्णिमा पर चाँद के पूरा दिखने के साथ पूरा होता। अगले दिन से चाँद पूरा होकर माघ में आ जाता।

माघ नाम सुनते तो लगता कि मेघ होते होंगे, पर माघ में मेघ न आते तो लगता मेघ न आते हों इसलिए माघ हो। पर ये सोचने में गफलत हो जाती और माघ सुनकर मेघ याद न किया करते। मेघ याद नहीं करने में मेघ हमेशा याद रहते।

पतझड़ अब पूरा होनेवाला होता। डालियों पर बहुत थोड़े पत्ते होते और मिट्टी में खूब सारे। बहुत देर से डाली पर बैठी चिड़िया मिट्टी में पड़ रही डाली की छाया पर आ बैठती। डाली की छाया पर उसे खूब सारे पत्ते मिलते। थोड़ी-थोड़ी फुदककर वह धूप-छाँव खेलती रहती।

पिछले दिनों जब पूरे वक्त पतंग उड़ाते रहते तो अकसर पतंग को देखते-देखते देखना चाँद से मिल जाता। अब पतंग उड़ाने का मौसम जा चुका होता पर चाँद देखने की आदत यूँ कि यूँ बनी रहती। चलते-फिरते दिन में ही आकाश को देखते और चाँद दिख जाता। किसी दोस्त को पतंग की इतनी याद आई होती कि वह खाली आसमान में पतंग उड़ाता। चाँद को देखते-देखते, देखना पतंग से मिल जाता! ऐसे में वैसी ही खुशी होती जैसे बारिश में भीगने से होती। माघ में बिन मेघ बारिश में भीगने-सा लगता।

सर्दी का मौसम अब याद में रहने जाने लगता और बसन्त का गुनगुना मौसम एक त्यौहार जैसे आता। इस मौसम में पीले रंग के कपड़े पहनते तो अपने आप को और आसपासवालों को फूल-सा सुन्दर पाते। एक-एक स्वेटर कम पहनते और शाम में थोड़ी और देर बाहर घूमते।

गुलमोहर के पेड़ पर पत्ते गहरे हरे रहते और कभी बहुत बड़े गुलमोहर पे अचानक एक फूल खिला दिख जाता। गुलमोहर में तो बहुत गर्मियों में फूल आते हैं फिर अभी कैसे! फूल का मन करता और वह उग जाता। बड़े से पेड़ के बीच में एक लाल फूल! इसी तरह किसी रोज़ जागते तो बाहर टप टप की आवाज़ सुनाई देती। हलकी-हलकी बारिश मिलती, आकाश में मेघ मिलते! बारिश का मौसम तो गर्मियों के भी बाद आता है तो फिर अभी कैसे! कुछ बादलों का मन करता वे आ जाते और बरसते भी! यूँ माघ के महीने में एक गुलमोहर के फूल जितनी बारिश कभी भी अपने मन से होने को चली आती।

जब मिट्ठू माखी भरे घर में छूट गया

सिमरन सिंह, 10 साल

चित्रः हीरा धुर्वे

बरसात की बात है। हर कोई ओसेरे (डेरे) पर चले गए थे। गाँव में हम पाँच बहनें थीं और दादी-दादी। हमारी फुई (बूआ) अलीचना हमें देखने गाँव पर ही रुक गई थी। एक शाम हम सब घर के बाहर बैठे थे। एक जात (पारदी जाति का आदमी) पास के पेड़ पर लगे माखी-जाल को गिरा रहा था। जाल की माखी (मक्खी) इधर-उधर घूमती रहती और कभी-कभी काट भी लेती। जात ने पत्थर से जाल गिराया और भाग गया। गलक (बहुत) सारी माखी भन-भन कर घूमने लगी। तभी हवा ज़ोर-से चलने लगी। पता नहीं तूफान के कारण या क्या घर में माखी भराने लगी। हम सब अन्दर के कमरे में भागे। बाहर के कमरे में दरवाज़ा नहीं था। माखी ज़मीन पर गिरती रही और दादी बुहार कर फेंकती रही। हमने सोचा बगल के घर में चले जाते हैं। हम निकलने ही वाले थे कि दादी ने बोला, "देयी (देवी) को नहीं छोड़ सकते। कुन्दों (पंचायत) भराएगा। जिरूमाना (ज़ुर्माना) होएगा।" देयी के पास भी गलक सारी माखी घूम रही थी। मैंने दादी से कहा, "मैं निकालकर लाऊँगी।" पर जब मैं उस कमरे में जाने लगी तो खिड़की के बाहरवाला पेड़ भूत जैसा दिखाई पड़ा। मैं डर गई और नहीं गई। फिर दादी ही गई। देयी की पेटी को खिड़की से बाहर कर दिया। फिर हम सब भागकर बगल के घर में चले गए। अभी बैठे ही थे कि श्रुति को याद आया कि मिट्ठू तो वहीं छूट गया। मुझे रोना आने लगा। हमारा मिट्ठू बहुत अच्छा है। बहुत कुछ बोलता है। नाम भी लेता है। मेरा काका कहीं से लाया था। मैं रोने लगी। दादी साल (शॉल) ओढ़कर दोबारा घर गई और साल में छिपाकर मिट्ठू को ले आई। उस रात हम घर नहीं लौटे। सवेरे सबसे पहले मैं और सजना दौड़कर देयी की पेटी उठाकर अन्दर रख दी।

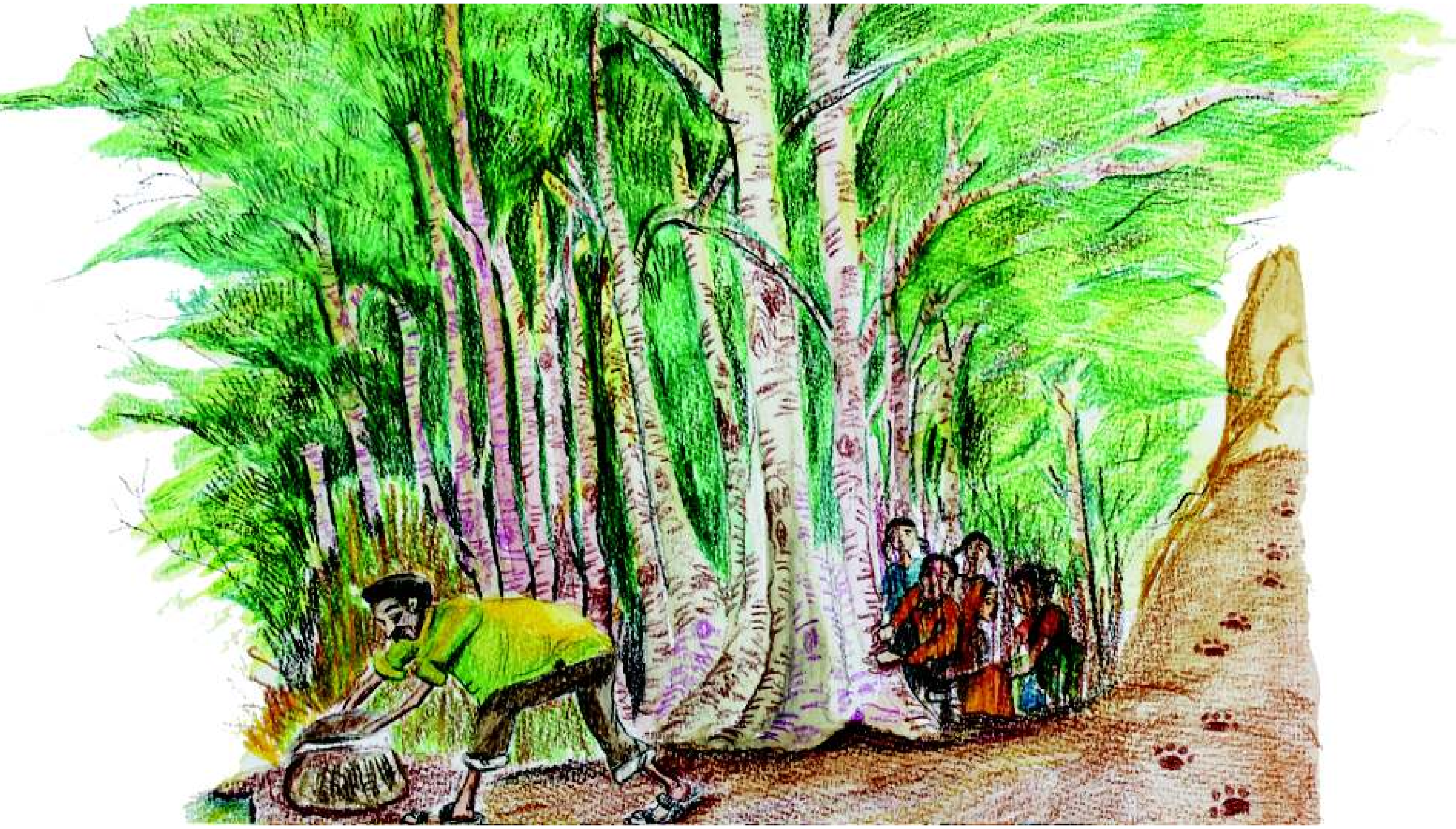

अचार बीनने गए और बाघ मिला

प्रद्यामणि सिंह, 12 साल

गर्मी में दो-तीन हफ्ते हम खूब अचार (चिरौंजी) बीनते हैं। जमाकर बाज़ार के रोज़ अब्दुल्लागंज में बेचते हैं। चार के पेड़ जंगल के खूब अन्दर हैं। हम अँधेरे ही निकल जाते हैं। टोकरी में रोटी और पानी ले जाते हैं। पिछले साल एक दिन भिनसारे (सुबह) हम बीनने निकले। बा (पिता), आया (माँ), मैं, गिरजा काकी, उसकी छोटी दीपा और तूफानी काका। हम खूब दूर जंगल के अन्दर चले गए। थोड़ी देर बाद मैंने देखा गिरजा इशारे कर रही थी। वो थोड़ा आगे पेड़ के नीचे बैठी बिन रही थी। धीमे-धीमे चिल्लाके बताई कि बाघ की आवाज़ सुनी है। मैं डर गई। बा आया को बताया। गिरजा ध्यान से सुन रही थी। तूफानी बीनते-बीनते नदी की तरफ बढ़ रहा था। हम उसका ध्यान खींचने की कोशिश कर रहे थे। पर वो देख ही नहीं रहा था। दीपा भी नदी की तरफ ही एक पेड़ के नीचे बीन रही थी। बन्दर की आवाज़ से लग रहा था कि शेर नदी की तरफ ही है। हम डर गए। गिरजा को पसीना आ गया। तभी तूफानी चिल्लाके ज़ोर से भागा। गिरजा ने दीपा को आवाज़ देकर बताया कि ध्यान रखे। दीपा धीरे-धीरे खिसककर हमारे पास आ गई। हम धीरे-धीरे वहाँ से हट गए। तीनेक बजे घर आए तो तूफानी घर पर मिला। बोला, "बाघ उसके सामने आ गया था।" वो चमक के (डर के) भागा तो सीधे घर पर ही रुका। हम बीन रहे थे और बाघ इतना पास था सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए।

आँगन में बगुला

गुरु प्रसाद शर्मा

आश्विन का महीना था। सूरज ढलने में अभी एक-आध पहर का समय बाकी था। स्कूल गए बच्चे घर लौट रहे थे। मैं छोटा था स्कूल नहीं जाता था। मेरी दीदी भी नहीं जाती थी। उस समय हम आँगन में खेल रहे थे। कुछ और बच्चे भी आ गए थे। हम अभी तय कर ही रहे थे कि कौन-सा खेल खेला जाए कि कोई चीखा, "ऐ, उधर देख बक (बगुला)..."

आँगन में एक बगुला कोने में दुबका बैठा था। मैंने पहली बार बगुले को करीब से देखा था – सफेद झख पंख, लम्बी पतली गर्दन, लम्बी टाँगें। हम सब खुशी से नाच उठे। मेरी उसे छूने की इच्छा हो रही थी। मन कर रहा था उसे अपनी गोद में लेकर बैठ जाऊँ; उसके माथे को चूम लूँ और पूछूँ कि आसमान में उड़ते वक्त कैसा लगता है, तालाब के उथले पानी में एक टाँग पर क्यों चुपचाप खड़े रहते हो – बगुला भगत...?

मगर पकड़ने की हिम्मत कोई नहीं जुटा पा रहा था। सभी बच्चे थोड़ी दूर पर बगुले को घेरकर बैठ गए थे। वह अपनी लम्बी गर्दन को सिकोड़कर दीवार से सट गया था।

छूने का बहुत मन कर रहा था। मैंने हाथ बढ़ाया...। अचानक मेरा हाथ रुक गया। डरकर पीछे देखा – दीदी थी। उसके चेहरे पर भी डर था। रोहित दा मेरी बगल में बैठे थे। उन्होंने कहा, "नहीं नुनु, देखते हो इसकी चोंच कितनी लम्बी है, चार अँगुल। सीधे माँस में घुस जाएगा।"

"हाँ, इसी से तो वो मछली पकड़ता है और पूरा का पूरा निगल जाता है।" मादो दी बोलीं।

मैंने हिम्मत जुटाकर बगुले की चोंच की ओर देखकर पूछा, "पूरी चार अँगुल की मछली?"

मादो दी अपनी उँगलियों से निगलने का अभिनय करती हुई बोलीं, "नहीं रे, थोड़ी छोटी, मगर बैंग (मेढक) को भी पूरा का पूरा गटक जाता है, छोटावाला।"

उसके अभिनय से सभी हँसने लगे। मैंने मन ही मन सोचा कि इतनी पतली चोंच से उतनी बड़ी मछली कैसे निगल जाता है। मैंने कौए को नज़दीक से देखा था। एक बार एक कौए ने मेरे हाथ से रोटी छीन ली थी। तब से उसके नज़दीक आने से डरता था। दूर से तो देखने में मज़ा आता था। उसके उड़ने, फुदक-फुदककर चलने और उसकी आवाज़ की नकल भी उतारा करता था।

अब मैं बगुले के बारे में सोच रहा था। मैंने दीदी से कहा, "चाची से भात माँग लाऊँ? यह भूखा होगा।"

सभी हँसने लगे। दीदी ने कहा, "बक रोटी-भात नहीं खाता है।"

"कौआ तो खाता है?"

"हाँ कौआ सब कुछ खाता है – भात-रोटी, कीड़े-मकोड़े, ज़िन्दा-मरा सब कुछ। मगर, बक तो ज़िन्दा मछली, बैंग और कीड़े-मकोड़े खाते हैं।"

चित्रः दिलीप चिंचालकर

"पानी में तो जौंक भी रहता है उसे भी खाता होगा? किस तरह भैंस से जौंक चिपक जाता है और खून चूस लेता है।"

मेरे इस सवाल का जवाब नहीं मिला। अब तक आठ-दस बच्चे जमा हो चुके थे। हममें से लछ्मन दा और राजेन्दर दा सबसे सयाने और साहसी थे। वे स्कूल जाते थे मगर कबड्डी और कुश्ती में सबसे आगे रहते थे।

लछ्मन दा ने बगुले को उठाते हुए कहा, "यह बगुला कहाँ से आ गया?"

लछ्मन दा ने बगुला को झट-से अपने दोनों हाथ से उठा लिया। बगुला कराह उठा, "कियाँ...।" पहली बार बगुले को इस तरह की आवाज़ निकालते सुना। इसके पहले तो आसमान में टोली में उड़ते हुए हमेशा अक-अक या वक-वक-वक जैसी आवाज सुनता था।

रोहित दा ने कहा, "बगुला नहीं, बक है।"

"उसी को तो बगुला कहते हैं।"

"नहीं बगुला छोटा होता है, उसकी गर्दन छोटी होती है और उसकी पीठ के पंख थोड़े मिट्‌टी के रंग के होते हैं।" रोहित दा ने ज़ोर देते हुए कहा।

"और हाँ, बगुला पानी के किनारे दिन भर बैठा रहता है, चुपचाप, शान्त; लगेगा कि सो रहा है।" मादो दी ने उसी तरह नकल करके बताया। सभी हँसने लगे। फिर राजेन्द्र दा ने कहा, "बगुला को ही 'बक' कहते हैं। है तो बगुला ही न? बगुला कई तरह के होते हैं।"

बच्चे बगुले को छूना चाह रहे थे। जो थोड़ा बड़े थे वे उसे अपने हाथ में लेना चाह रहे थे। इसी छीना-झपटी में न जाने कैसे रोहित दा की गाल से बगुले की चोंच टकरा गई। जिससे उनकी गाल में थोड़ी खरौंच आ गई। रोहित दा रोते-रोते यह कहते हुए घर की ओर चले गए कि मैया से जाकर शिकायत करता हूँ।

बेचारे लछ्मन दा डर गए। इसी बीच अन्दर से चाची की आवाज़ आई, "कौन रो रहा है?" बस क्या था राजेन्द्र दा ने झट-से बगुले को अपने हाथ में लेकर कहा, "चल इसे पेड़ पर रख आते हैं।"

सभी बच्चे राजेन्द्र दा के साथ चलने लगे। गाँव के उत्तर में अन्तिम छोर पर हमारा घर था। घर के पास एक छोटा-सा बाँध था। बाँध पर एक बड़ा-सा नीम का पेड़ था। उस समय उसकी बगल में एक पलाश का पेड़ भी था, नीम पेड़ से छोटा। राजेन्द्र दा पलाश के पेड़ पर बगुला को रखने चढ़ गए, यह कहते हुए कि इसके माँ-बाप इसे अपने साथ ले जाएँगे। राजेन्द्र दा के हाथ से छूटते ही बगुला फुर्र से उड़कर नीम पर चला गया।

कुछ देर तक मैं बगुले को देखता रहा।

एक गतिविधि

विवेक मेहता

टिक-टिक

जब हम अपने आसपास की घटनाओं के बारे में सोच-विचार कर रहे होते हैं तो कभी-कभी समय को मापने या उसका रिकॉर्ड रखने की ज़रूरत पड़ती है। अकसर पूछा जाता है कि – कितना समय हुआ? कितना वक्त लगा? कब पहुँचे? इन सवालों के जवाब देने के लिए हमारे पास घड़ी जैसा यंत्र है, जिससे समय को माप सकते हैं। ऐसा ही एक यंत्र है – स्टॉप-वॉच। आमतौर पर स्टॉप-वॉच का इस्तेमाल खेलों में होता है। एक आम दीवार या हाथ घड़ी से एक सेकेंड से कम समय को नहीं माप सकते। जबकि एक साधारण-सी स्टॉप-वॉच से एक सेकेंड के सौवें हिस्से के बराबर यानी एक सेंटीसेकेंड की समयावधि भी मापी जा सकती है।

आजकल के लगभग हर मोबाइल फोन में स्टॉप-वॉच की सुविधा रहती है। इस बार की गतिविधि मोबाइल स्टॉप-वॉच से ही जुड़ी है। इसे तुम अपने दोस्तों व भाई-बहनों के साथ करोगे तो और मज़ा आएगा। इस गतिविधि में हम देखेंगे कि एक स्टॉप-वॉच से क्या एक सेकेंड के सौवें हिस्से को मापा जा सकता है?

चित्रः विभूति पाण्डे

अब सवाल यह कि तुम्हें करना क्या है! सबसे पहले तो एक मोबाइल फोन जुगाड़ लो। और अगर पता ना हो तो किसी से पता करो कि मोबाइल में स्टॉप-वॉच कहाँ है, कैसे चलती है, बन्द व रीसेट कैसे की जाती है और कैसे पढ़ी जाती है। अमूमन जिस बटन को दबाकर स्टॉप-वॉच चालू की जाती है उसी से बन्द होती है। रीसेट करने के लिए options में जाकर रिसेट को select करना पड़ता है।

(शेष भाग पेज 35 पर)

माथापच्ची

1 नीचे दिए गए चित्र में इस तरह रंग भरो कि:
लाल रंग के ठीक बाजू में काला रंग ना हो
नीला रंग काले और पीले के बीच में हो।
चौकोर में हरा रंग ना हो
और नीला रंग गुलाबी रंग के दाएँ तरफ हो।

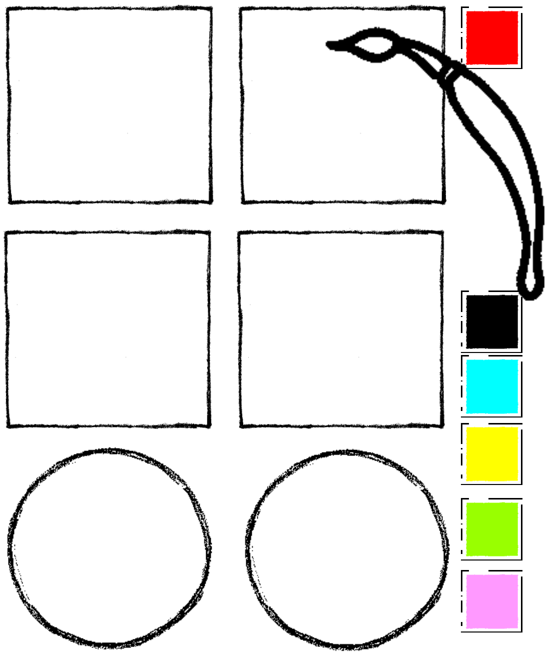

2 ऐसी कौन-सी चीज़ है जिसे तुम अपने बाएँ हाथ से नहीं पकड़ सकते?

3 गर्म चाय को काँच के गिलास में डालने पर गिलास को चटकने से बचाने के लिए मोटी दीवारवाले गिलास का इस्तेमाल करना बेहतर होगा या पतली दीवारवाले और क्यों?

4 एक सेठ ने आस-पास के 3 गाँवों के 100 लोगों को भोज पर आमंत्रित किया। उसने केवल 100 पत्तलें ही मँगवाईं। केवल 100 पत्तलों को देखकर एक गाँव के लोग बोले, "हम तो एक पत्तल पर बैठेंगे और एक पर खाएँगे।" दूसरे गाँव के लोग बोले, "हम तो दो पत्तलों पर बैठेंगे और दो पर खाएँगे।" सेठ को परेशान देखकर तीसरे गाँव के लोग बोले, "हम एक पत्तल में चार लोग खा लेंगे।" सभी मेहमानों ने भोज किया। ना कोई मेहमान बचा और ना ही कोई पत्तल। ज़रा बताओ कि भोज में हर गाँव से कितने लोगों को आमंत्रित किया गया था?

यदि तुम्हें गर्मी की छुट्टियाँ अपनी मनचाही जगह पर अपनी मनचाहा काम करते हुए बिताने का मौका मिले तो तुम कहाँ जाना चाहोगे और क्या करना चाहोगे?

बिल → पल → साल → साज

5 जिस तरह हम एक-एक अक्षर बदलते हुए "बिल" शब्द से "साज" शब्द तक पहुँचे हैं वैसे ही तुम्हें "कपास" शब्द से "अनार" शब्द तक पहुँचना है। पर ध्यान रहे एक बार में तुम केवल एक ही अक्षर बदल सकते हो और हर बार बननेवाला शब्द सार्थक होना चाहिए। और हाँ ऐसा तुम्हें कम से कम बारी में वह करना है।

झटपट और नटखट

रमेश उपाध्याय

एक थे झटपट, एक थे नटखट। झटपट बड़े थे, नटखट छोटे। बड़े केवल दो साल बड़े थे, छोटे केवल दो साल छोटे। दोनों स्कूल में पढ़ते थे। झटपट पाँचवीं में, नटखट तीसरी में। घर से दोनों भाई साथ-साथ स्कूल जाते और साथ-साथ ही वापस घर आते।

वे शहर में नहीं, गाँव में रहते थे। स्कूल उनके गाँव में नहीं, दूर दूसरे गाँव में था। वहाँ तक पैदल जाना पड़ता था और पैदल ही वापस आना पड़ता था। जाते समय रास्ते में उन्हें कई चीज़ें मिलती थीं। पोखर, बरगद, खेत, बाग, नाला और नदी। वापस आने पर भी रास्ते में उन्हें कई चीज़ें मिलती थीं। नदी, नाला, बाग, खेत, बरगद और पोखर।

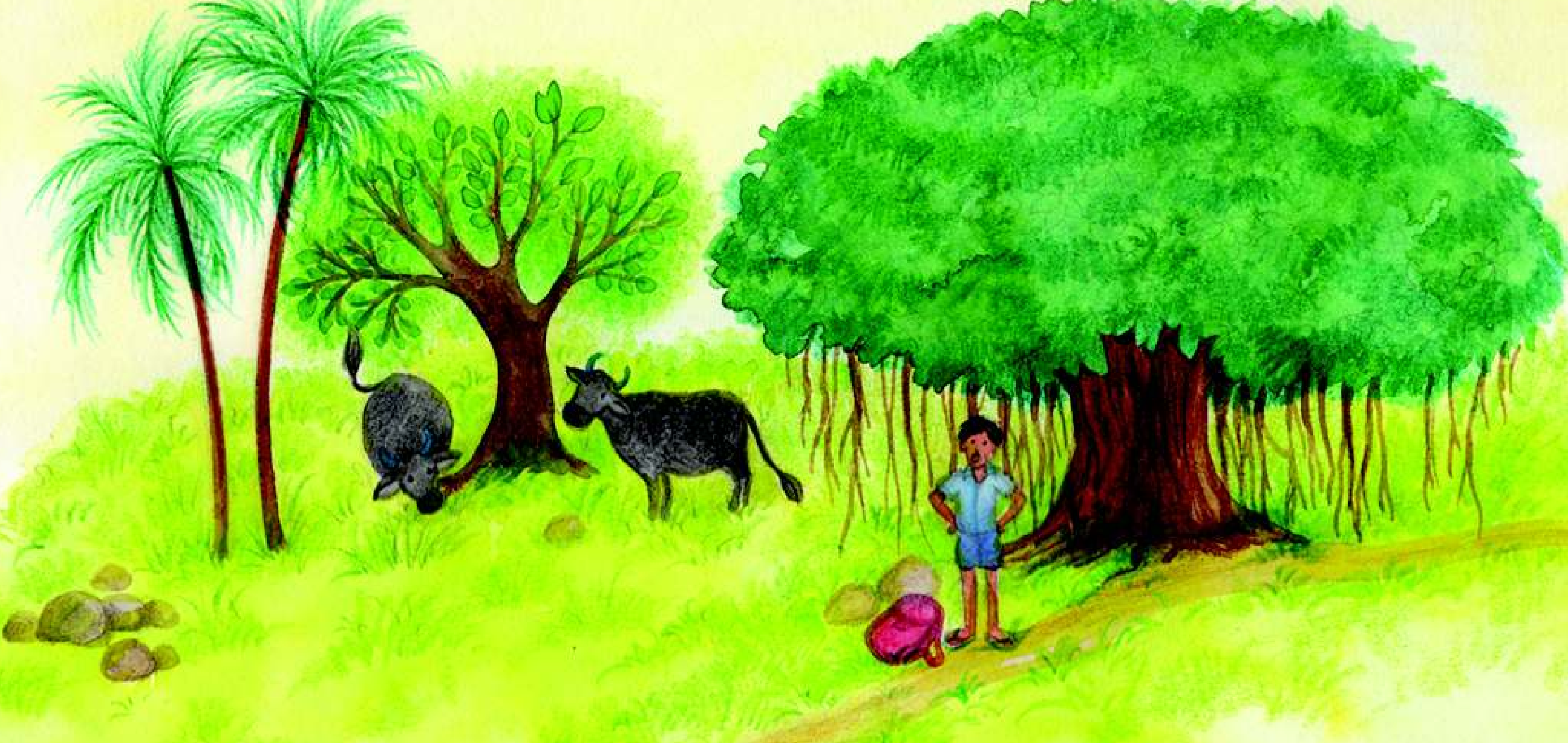

झटपट तेज़-तेज़ चलते थे, नटखट धीरे-धीरे। झटपट बरगद तक पहुँच जाते, तब तक नटखट पोखर तक ही पहुँचे होते। झटपट बाग तक पहुँच जाते, तब तक नटखट खेत तक ही पहुँचे होते। झटपट नदी तक पहुँच जाते, तब तक नटखट नाले तक ही पहुँचे होते। माँ की हिदायत थी कि झटपट को छोटे भाई का ध्यान रखना है, नटखट को अपने साथ ही रखना है। इसलिए झटपट को आगे निकल जाने पर पीछे मुड़कर देखना पड़ता। उन्हें नटखट को पुकारकर जल्दी चलने के लिए कहना पड़ता। बार-बार रुककर नटखट का इन्तज़ार करना पड़ता। कभी स्कूल जाने के लिए देरी होती देख नटखट का हाथ पकड़कर अपने साथ दौड़ाना भी पड़ता। झटपट परेशान हो जाते और घर लौटकर माँ से शिकायत करते, "माँ, छोटे बहुत परेशान करते हैं।"

"छोटे हैं न!" माँ मुस्करा देतीं, "और बड़े को तो छोटे का ध्यान रखना ही पड़ता है।"

झटपट झुँझलाते, पर कुछ कह न पाते। बड़े थे। छोटे का ध्यान तो उन्हें रखना ही था। लेकिन उन्हें लगता कि नटखट कुछ ज़्यादा ही नटखट हैं। रास्ता चलते रुककर पोखर के पानी के अन्दर की मछलियाँ और पानी के ऊपर की बत्तखें देखने लगते हैं। बरगद से नीचे आती जड़ें पकड़कर झूलने लगते हैं। खेत में घुसकर खाने की कोई चीज़ खोजने लगते हैं। बाग से गुज़रने पर आम या अमरूद तोड़ने लगते हैं। नाले को उधर से इधर और इधर से उधर छलाँग लगाकर पार करने का खेल खेलने लगते हैं। नदी के पुल को जल्दी से पार करने की बजाय उसकी मुँडेर से टिककर नीचे बहती नदी को निहारने लगते हैं।

चित्रः शौलजा जैन चौगले

एक दिन तो नटखट ने हद ही कर दी। दोनों भाई स्कूल से लौट रहे थे। नदी का पुल आया, तो नटखट पुल पर चढ़ने की बजाय नीचे उतर गए और नदी किनारे जा पहुँचे। बस्ते में पहले से बनाकर रखी हुई कागज़ की दो नावें निकालीं और एक-एक करके बहते पानी में छोड़ दीं। नावें बह चलीं, तो नटखट खुश होकर ताली बजाने लगे।

उधर पुल पर पहुँच चुके झटपट ने पीछे मुड़कर देखा, तो नटखट नहीं दिखे। झटपट घबरा गए कि नटखट कहाँ गए। ताली बजने की आवाज़ सुनकर नीचे देखा, तो नटखट नीचे नदी किनारे खड़े दिखे। झटपट को उन पर बड़ा गुस्सा आया। ज़ोर-से चिल्लाकर बोले, "अरे, छोटे! तुम वहाँ नीचे क्या कर रहे हो?"

नटखट ने चौंककर ऊपर देखा और नदी किनारे रखा अपना बस्ता उठाने के लिए झुके। अचानक उनका पाँव फिसला और वे पानी में गिर पड़े। पानी का बहाव तेज़ था और नटखट को तैरना नहीं आता था। छोटे-से ही तो थे। बह गए। डूबते-उतराते दूर जाने लगे।

झटपट को तैरना आता था। उन्होंने झट अपना बस्ता पीठ से उतारकर पुल की मुँडेर पर रखा और नदी में कूद पड़े। थोड़ी दूर तैरने के बाद ही उन्होंने नटखट को पकड़ लिया और किनारे पर ले आए। झटपट को इतना गुस्सा आ रहा था कि नटखट को दो झापड़ लगाएँ पर नटखट इतना डरे और घबराए हुए थे कि उन्हें छोटे भाई पर प्यार आ गया। उन्होंने नटखट का हाथ पकड़े-पकड़े उनका बस्ता उठाया और पुल तक पहुँचानेवाली चढ़ाई चढ़ने लगे।

पुल पर पहुँचे ही थे कि नटखट अचानक गला फाड़कर रोने लगे। झटपट ने कहा, "अब तो तुम बह जाने से बच गए हो, फिर क्यों रो रहे हो?"

नटखट ने रोते-रोते कहा, "तुम घर जाकर माँ से मेरी शिकायत करोगे।"

"अगर न करूँ, तो?"

"तो जो कहो।" नटखट का रोना बन्द हो गया।

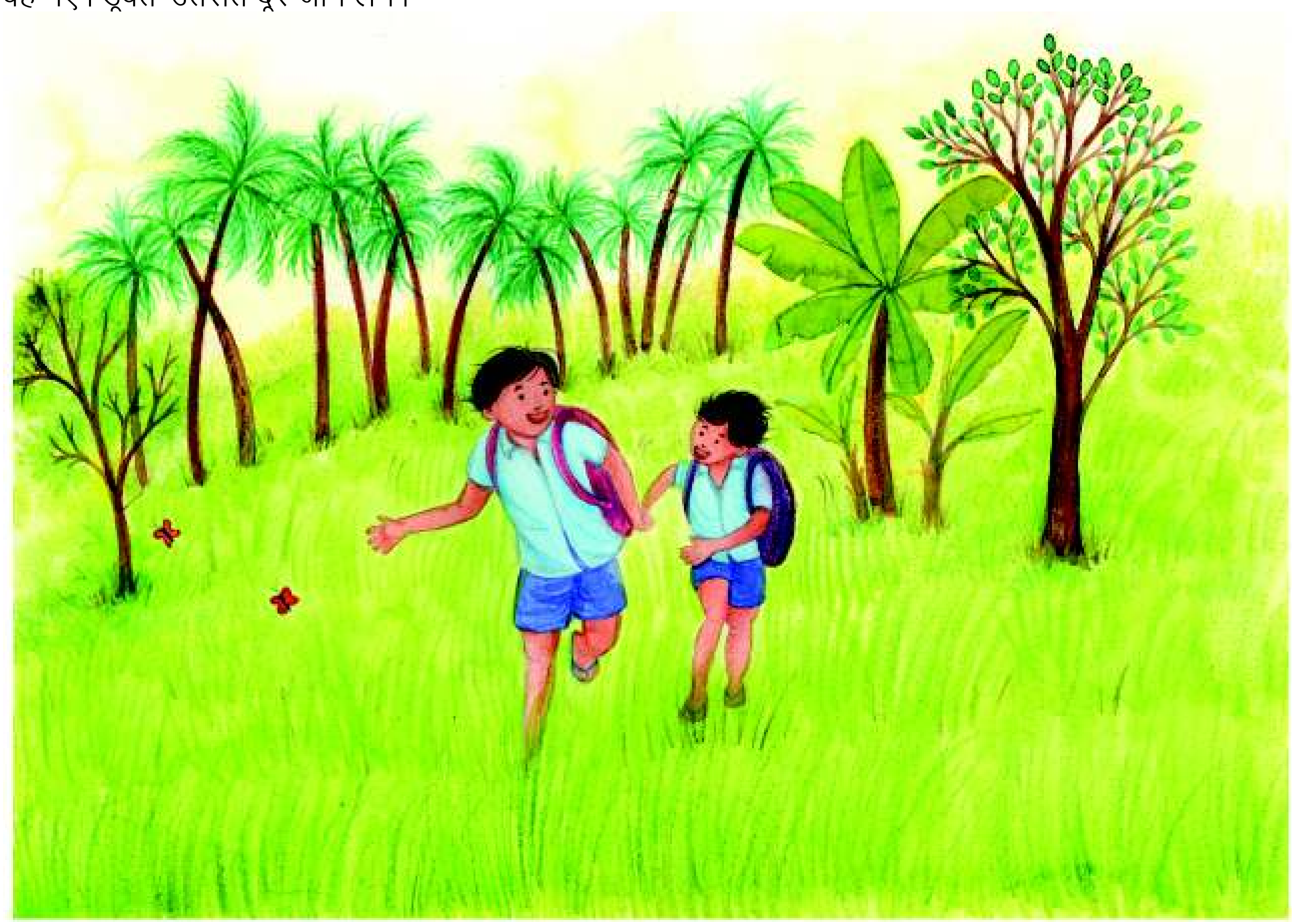

“मुझे कागज़ की नाव बनाना नहीं आता। तुम सिखा दोगे?”

“हाँ, उसमें क्या है!” नटखट खुश होकर बोले, “पर मुझे तैरना नहीं आता। तुम सिखा दोगे?”

“हाँ, उसमें क्या है!” झटपट ने मुस्कराते हुए नटखट की नकल की और दोनों भाई हँस पड़े।

लेकिन झटपट ने नटखट का बस्ता उन्हें पकड़ाकर पुल की मुँडेर पर से अपना बस्ता उठाया, तो एकदम चिन्तित होकर बोले, “अरे, छोटे, हम दोनों के कपड़े भीग गए हैं। हमें भीगे कपड़ों में देख माँ पूछेंगी, तो क्या कहेंगे?”

“हाँ, बड़े! अब?” नटखट ने एक पल सोचा और बोले, “आओ, दौड़ लगाते हैं। कपड़े अपने-आप सूख जाएँगे।”

“हाँ, यह ठीक है।” झटपट ने अपना बस्ता पीठ पर टाँगते हुए कहा।

नटखट ने भी अपना बस्ता पीठ पर टाँग लिया और झटपट के बराबर खड़े होकर दौड़ शुरू करने के अन्दाज़ में बोले, “एक...दो...तीन!”

दोनों दौड़ पड़े। आगे-पीछे नहीं, एक-दूसरे का हाथ पकड़े साथ-साथ।

सर्दियाँ अभी शुरू नहीं हुई थीं। मौसम साफ था। चटकीली धूप निकली हुई थी। दोनों भाई मज़े में दौड़ते चले गए। नाला पार किया। बाग पार किया। खेत पार किया। बरगद को भी पीछे छोड़ दिया। लेकिन पोखर तक पहुँचते-पहुँचते दोनों थक गए और रुक गए।

“कपड़े सूख गए, छोटे!” झटपट ने हाँफते हुए लेकिन खुश होते हुए कहा।

“हाँ, बड़े, सचमुच! कपड़े तो सूख गए!” नटखट ने भी खुश होकर कहा।

तभी नटखट को पोखर किनारे एक चिकनी गिट्टी दिखाई पड़ी। नटखट ने उसे उठा लिया और तिरछे होकर उसे इस तरह फेंका कि गिट्टी पानी की सतह पर उछलती हुई दूर तक चली गई। देखा-देखी झटपट ने भी एक गिट्टी उठाकर फेंकी, लेकिन उनकी गिट्टी एकदम पानी में गुडुप हो गई।

“बड़े, तुम को गिट्टी तैराना नहीं आता?”

“हाँ, छोटे। तुम सिखा सकते हो?”

“क्यों नहीं! अभी लो!” नटखट ने ध्यान से नीचे देखकर एक गिट्टी उठाई और झटपट को दिखाते हुए बोले, “गिट्टी ऐसी लो, जो ज़्यादा भारी और खुरदरी न हो। हलकी और चिकनी हो। और उसे इस तरह फेंको...”

लेकिन अब तक झटपट का ध्यान बँट चुका था। वे पोखर के पानी पर तैरती बत्तखों को ध्यान से देख रहे थे।

एक गतिविधि

टिक-टिक

(पेज 30 का शेष भाग)

स्टॉप-वॉच को शून्य पर सेट करो और जितनी तेज़ी-से कर सको, स्टॉप-वॉच को चालू और बन्द करो। ध्यान रहे कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी। मानो तुम ऐसी घटना को रिकॉर्ड कर रहे हो जो झट-से हो जाती हो। अब स्टॉप-वॉच की रीडिंग को कहीं नोट कर लो। और जितनी बार मन हो उतनी बार पूरी प्रक्रिया को दोहराओ। अपनी व अपने साथियों की रीडिंग के आधार पर हमें अपने अनुभव लिख भेजो।

– क्या हर बार तुम्हारी रीडिंग एक जैसी आई? अगर नहीं तो ऐसा क्यों हुआ होगा?

– क्या तुम्हारी या तुम्हारे साथियों की कोई भी एक रीडिंग एक संेटीसेकेंड के बराबर आई? अगर नहीं तो क्यों?

इस गतिविधि को करने के बाद तुम्हें लगता है कि स्टॉप-वॉच से एक सेकेंड के सौवें हिस्से की समयावधि को माप सकते हैं? अपनी कल्पना को उड़ान भरने दो। यह भी सोचना कि एक संेटीसेकेंड या उससे भी कम समयावधि को मापने का तुम कौन-सा तरीका सुझाओगे?

अच्छा होगा कि इन सवालों पर अपने साथियों के साथ थोड़ी चर्चा करके अपने जवाब तैयार करो।

...और हाथी क्या सोचते होंगे?

चित्रः जगदीश जोशी

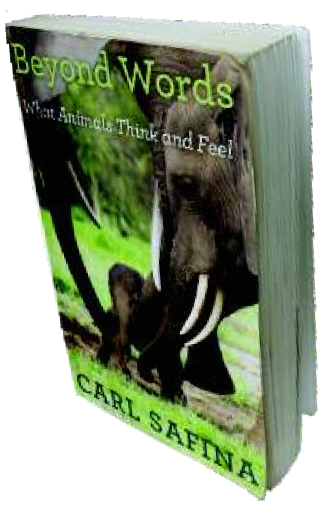

पच्चीस साल की माँ पेटूला और उसकी बहनों के सहारे ये नन्हा पहली बार अपनी टाँगों पर खड़ा हो रहा है।

बिऑण्ड वर्ड्स - वॉट एनिमल थिंक एण्ड फील
लेखक - कार्ल सफीना
प्रकाशक - ए जॉन मैकरे बुक, हैनरी हॉल्ट एण्ड कम्पनी, न्यू यॉर्क

मैं सात साल का था जब मेरे पिता ने हमारे घर के पीछे कबूतरों के लिए एक छोटा-सा बाड़ा बनाया। मैं कबूतरों को घर बनाते, लड़ते-झगड़ते, फिर एक हो जाते, अण्डे देते, बच्चों का मिलकर ख्याल रखते, उड़कर जाते और वापस घर लौटते देखता। वो अपने घर में उसी तरह रहते जैसे मैं अपने घर में रहता था। लेकिन थोड़े अलग तरीके से। इससे मेरा इस बात पर पूरा यकीन बना कि हम सब की दुनिया एक ही है। बड़े होने के बाद मैं कई साल जानवरों के साथ रहा। वो अपनी दुनिया में रहते। मैं उन्हें बस देखता। और सोचता कि वो वैसा क्यों कर रहे हैं। मुझे इसमें बड़ा मज़ा आता।

फिर ख्याल आया कि क्यों ना मैं ऐसे लोगों से मिलूँ जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी का एक बड़ा हिस्सा जानवरों के साथ बिताया है। वहीं से इस किताब का आइडिया आया *बिऑण्ड वर्ड्स — वॉट एनिमल थिंक और फील।*

— यह कहना है इस किताब के लेखक कार्ल सफीना का। इस किताब में हाथियों, भेड़ियों, व्हेल के साथ लम्बे समय तक रहे लोगों की यादें हैं और हाथी, व्हेल, भेड़ियों को जानने-समझने के इशारे भी हैं...।

इस अंक में हम मुलाकात करेंगे सिन्थिया मॉस और उनके साथियों से। लगभग चालीस साल पहले न्यूयॉर्क की अपनी नौकरी छोड़कर हाथियों के साथ रहने एम्बोसिल, केन्या चली आई थीं। और तब से वहीं रह रही हैं...

एक सुबह मैं सिन्थिया से मिला। गाड़ी से मैं अभी उतरा भी नहीं था कि एक हाथी हमला करने की मुद्रा में मेरे सामने आ गया। मैं अचकचाकर पीछे हट गया। पास खड़ी सिन्थिया ने बिना कोई जल्दी दिखाए उसकी सूँड पर हाथ फेरा और नरमाई से कुछ कहा। फिर मेरी तरफ मुस्कराकर बोलीं, "एमीलिया आज मस्ती के मूड में है।" मैं भी मुस्करा दिया। एमीलिया कुछ देर खड़े रहने के बाद पास के एक पाम के नीचे चली गई। एम्बोसिल राष्ट्रीय पार्क में सिन्थिया से यह मेरी पहली मुलाकात थी। मैंने सोचा था कि चालीस साल हाथियों के साथ गुज़ारने के बाद शायद वो उकता चुकी होंगी। पर सामने खड़ी सत्तर साल से कुछ ऊपर की सिन्थिया की आँखों की चमक मेरे वहम को झुठला रही थी। वो कह रही थीं, "मैं इन्हें बस देखती हूँ। सुनती हूँ। वो मुझसे बात नहीं करते – पर एक-दूसरे से बहुत बोलते हैं। कुछ मैं सुन पाती हूँ। बाकी शब्दों के परे हैं। मैं उन्हें सुनना चाहती हूँ।"

मुझे वो सुबह बड़ी खुशनुमा लगी। सुबह की लाली आसमान से लेकर दूर-दूर तक बिछी हरी घास की चादर पर पसरी थी। आसपास बहुत सारे पेड़ थे। पानी के सोतों ने उस जगह की ठण्डक को बचाए रखा था। कई छोटे-बड़े हाथी कीचड़ में लोट रहे थे। पानी को सूँडों में भर अपनी पीठों पर बरसा रहे थे। "वो अल्फ्री है जो धूप सेंक रही थी। और वो उसके बच्चे जो घण्टेभर की धमाचौकड़ी के बाद सो रहे हैं।"

"आप सभी का नाम कैसे जानती हैं?" मेरे सवाल का जवाब विकी ने दिया जो पिछले 6 साल से उनके साथ हैं।

"आसान है। जैसे आप अपने दोस्तों को नाम से जानते-पहचानते हैं। हम भी किसी को उनके कान के छेद से, किसी को माथे के निशान से तो किसी को उसके हावभाव से पहचानते हैं। यहाँ रह रहे सभी 1200 हाथियों को मैं पहचानती हूँ। और वो भी हमें पहचानते हैं।"

सिन्थिया बोली, "जब हम बहुत सारे शेर, ज़ेब्रा या हाथियों को एक साथ देखते हैं तो उनके दो आयाम ही दिखते हैं। पर जैसे ही हम उन्हें पहचानने लगते हैं, उसमें एक और आयाम जुड़ जाता है। उनकी पहचान का आयाम। जैसे, उनकी माँ कौन थी। उनके बच्चे कौन हैं। यह बहुत शान्त है, वो शर्मीला। ये ज़रा दादा टाइप है। खाने की कमी हो तो छीनके खाने से इसे ज़रा परहेज़ नहीं...। पर बावजूद इस सब के मैं उन्हें हाथी की तरह ही देखती हूँ। लोगों से उनकी तुलना करना मुझे जमता नहीं। वो जैसे हैं मेरी दिलचस्पी उसी में है। जैसे एक कौआ अपने छोटे-से दिमाग से इतने सारे फैसले ले लेता है कि आप हैरान रह जाएँ। पर एक तीन साल के इंसानी बच्चे से उसकी तुलना मुझे बेमानी लगती है।"

सूँड से मुँह को छुआने में सब शामिल है - स्वागत करना, हाथ मिलाना, गले लगना और चूमना भी। नर हाथी मादा के मुँह में अपनी सूँड डालकर अपना प्रेम दर्शाता है।

मुझे लगा वो सही कह रही हैं। इंसान के पैमाने से हर चीज़ को देखना सही नहीं है।

इस बीच एमीलिया ने पाम की शाख को सूँड में लपेटकर तोड़ा और अब आराम से चबा रही थी। अमूमन हाथी बड़े आराम से खाना खाते हैं। बीच में रुक भी जाते हैं मानो कुछ सोच रहे हों। शायद कुछ सुनने के लिए, या किसी खतरे का अन्दाज़ लगा रहे हों।

"मैं नहीं जानती कि मेरे पास बैठे हाथी को किसी चीज़ का जो अहसास होता है वो मुझे होनेवाले अहसास से कितना भिन्न होता है। मुझे तो उस चीज़ की खबर कई रस्तों से मिलती है – आँख से, नाक से, आवाज़ से, छूकर या स्वाद से। पर उस तक तो ज़्यादा खबरें उसकी नाक ही पहुँचाती है।" सिन्थिया की हर बात में उसका सालों का अनुभव बोल रहा था।

इसी बीच दूर से एक हाथी आता दिखा। सिन्थिया बोली, "वो एलिसन हैं। चार साल पहले जब यहाँ भयानक सूखा पड़ा था तो एम्बोसिल के 1600 में से 400 हाथी मारे गए थे। चालीस साल से ऊपर के तकरीबन सारे हाथी खत्म हो गए। सारे दूध पीते बच्चे मर गए। वैसे तो जब भी कोई हाथी गिर जाता है तो परिवार के सारे लोग उसे घेर लेते हैं और उसे उठाने की कोशिश करते हैं। पर सूखे में किसी के पास ताकत नहीं बची थी। उन्हें मरता देखना एक बड़ी यातना थी। उनके लिए भी मेरे लिए भी। एलिसन उस सूखे को झेल पाई। आज वो 51 साल की है। और अपने परिवार की मुखिया है। मुखिया पर पूरे परिवार की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी होती है। उसके पास पिछली यादों का बड़ा भण्डार होता है। एम्बोसिल में जब सूखा पड़ा तो एलिसन अपने परिवार के साथ यहाँ से दूर चली गई जहाँ खाने-पीने को खूब था। उसे याद रहा था कि पिछली बार जब खाने-पानी की कमी हुई थी तो वो कहाँ गए थे। अमूमन 38 से 55 साल के बीच की हथनियों का स्मृति भण्डार बहुत बड़ा होता है। सालों तक किसी रास्ते पर नहीं जाने के बावजूद उन्हें याद रहता है कि किस ढलान पर उतरने और किस रास्ते पर कितना जाने पर उन्हें खाना-पानी मिल जाएगा।

और जब सूखे के बाद बरसात हुई तो घास एकदम से हरी हो गई। हर ओर पानी। पेड़-पौधे हरे हो गए। हरियाली की चादर फिर से बिछ गई। हाथियों के लिए भी यह खुशी का आना था। दो साल के सूखे के बाद ये बारिश के आने का नतीजा था कि हमारे यहाँ बच्चों के आने का तांता ही लग गया। अगले दो सालों में यहाँ 250 बच्चे पैदा हुए।" कहते हुए सिंथिया की आवाज़ खुशी से भर गई।

"बच्चा पैदा होते वक्त तीन फीट का और तकरीबन 260 पाउण्ड वजनी होता है। पैदा होते ही वह अपनी माँ से चिपका रहता है। माँ की छातियाँ दूध से इतनी भर जाती हैं कि चलने पर आपस में टकराती रहती हैं। बच्चा दिन में 20 लीटर तक दूध पीता है। दूध पिलाते हुए माँ लोरी जैसी धीमी आवाज़ निकालती है। बच्चे की देखभाल का ज़िम्मा पूरे परिवार पर होता है।

बच्चा सूँड से ही दुनिया का जायज़ा लेता है। जैसे-जैसे वो बड़ा होता है अपनी सूँड को इधर-उधर हिलाते-डुलाते हुए सब कुछ सूँघता रहता है। यही उसका चीज़ों को महसूस करने का तरीका है। सूँड को नियंत्रित करने की कोशिश में वो उसे फिरकी की तरह गोल-गोल भी घुमाता है। इस सब के चलते कभी-कभी तो उसकी सूँड उसी के पैर के नीचे आ जाती है और वो धड़ाम से गिर पड़ता है। कभी तो सूँड को मुँह में डालकर वो चूसने लगता है जैसे बच्चे अँगूठा चूसते हैं।"

एम्बोसिल में कई दिन रहा। हर दिन हाथियों से मेरी पहचान बढ़ रही थी। मुझे पता चला कि अमूमन हाथी बारीकियों पर ध्यान नहीं देते। पर किसी पहचानी चीज़ में हुए थोड़े-से बदलाव को भी वो भाँप जाते हैं। जैसे एक दिन एक फोटोग्राफर को सूझा कि क्यों ना आज किसी नए एंगल से फोटो खींची जाए। तो वो वहाँ खड़ी गाड़ी के नीचे कैमरा लेकर लेट गया। रोज़ का दिन होता तो उसे फोटो लेता देख हाथी पास से गुज़र जाते। पर आज उन्हें कुछ गड़बड़ लगी। वो रुके। शायद सोच रहे हों कि ये बन्दा नीचे कर क्या रहा है? फिर निक नाम के हाथी ने अपनी सूँड गाड़ी के नीचे सरकाई और इधर-उधर सरकाने लगा। उसने उस बन्दे को

बाहर खींचने की कोई कोशिश नहीं की। क्या पता समझ गया हो कि कोई खतरे की बात नहीं।

हाथियों की सूँड कमाल की चीज़ होती है – बहुत ही संवेदनशील और आश्चर्यजनक रूप से मज़बूत। जिस सूँड से अण्डे को बिना तोड़े उठाया जा सकता है उसी से अगर कसकर झापड़ रसीद दिया जाए तो सामनेवाला अपनी जान तक से हाथ धो बैठ सकता है। सूँड के सिरे पर दो उँगलियाँ जैसी होती हैं। मानो दो उँगलीवाला दस्ताना पहना हो। उन्हें सूँड को इस्तेमाल करते देख लगता है मानो कोई एक हाथ से सारे काम निपटा रहा हो। रास्ते में कहीं कोई गड्ढा तो नहीं यह भी सूँड बता देती है। और पानी-धूल का फव्वारा तो खैर छोड़ती ही रहती है। हवा को सूँघकर किसी खतरे के अँदेशे से आगाह भी यही करती है और साथी की पहचान भी यही कराती है। खाना जमा करना हो या दोस्तों का स्वागत, बच्चों को उठाना-धरना हो या प्रेम का इज़हार – सूँड के बिना कुछ सम्भव नहीं। ये वो सारे काम कर सकती है जो आँख, नाक, हाथ और मशीन से होते हैं। सूँड मानो हथेली पर लगी नाक हो। जिसे छुआ, उसे सूँघ लिया।

हाथी परिवार में रहना पसन्द करते हैं। उनके परिवार की मुखिया सबसे बड़ी उम्र की मादा होती है। परिवार में मुखिया के अलावा उसकी बहनें, उनकी बेटियाँ और सभी के बच्चे होते हैं। बड़े होने के बाद नर परिवार को छोड़कर दूसरे नरों के साथ जा मिलते हैं। जैसे इमेरी अभी 14 साल का है। उसने परिवार छोड़ दिया है। उसे अलग रहने के लिए उकसाया जा रहा है। पर अभी उसे कुछ सूझ नहीं रहा। वो कभी एक परिवार के पीछे लग जाता है कभी दूसरे के। उसके लिए यह मुश्किल दौर है। अभी वो अकेला और ठुकराया हुआ महसूस कर रहा है। पर थोड़े दिनों में वो सम्भल जाएगा और नर हाथियों के समूह में शामिल हो जाएगा। परिवार में उसका कभी-कभार का आना-जाना बना रहेगा।

मुखिया की मौत अकसर परिवार को बिखेर देती है। जब एक शिकारी की गोली किसी हाथी को लगती है तो वो सिर्फ एक हाथी को नहीं मारती। वो उस बूढ़ी माँ की स्मृतियाँ भी परिवार से छीन लेती है। वही तो जानती थी कि सूखे के सबसे मुश्किल दिनों में उन्हें कहाँ खाना, पानी मिल सकता था जिससे वो बचे रह सकते थे। एक गोली कई सालों बाद कई हाथियों के मरने की वजह बनती है।

(अगले अंक में जारी)

बच्चे बड़ों की चौकसी में सोने का लुत्फ उठाते हैं।

स्कूल के भूत का रहस्य

अनूप मणि त्रिपाठी

मिंटू भैया पूरे एक साल बाद गाँव आए हैं। राजू आज बहुत खुश है। वह उनके चाचा का लड़का है जो शहर में पढ़ाई कर रहा है। दोनों की उम्र में करीब आठ साल का अन्तर है, लेकिन वह मिंटू भैया का बहुत ही मुँह लगा है। मिंटू भैया इस बार राजू के लिए वैज्ञानिकों के किस्सों की कोई किताब लाए हैं। मिंटू भैया राजू और उसकी बड़ी बहन रजनी से खूब बातें करते हैं। रजनी सातवीं में पढ़ती है और राजू पाँचवीं में। दोपहर को खाना खाने के बाद मिंटू भैया चारपाई पर लेट गए। और जल्दी ही उन्हें नींद ने आ घेरा।

आँख खुली तो देखा रजनी दालान में खेल रही है। उन्होंने पूछा, "अरे, आज स्कूल नहीं गईं!" इसका जवाब धमाचौकड़ी मचाते राजू ने दिया, "भइया, आजकल स्कूल में भूत आते हैं!" "अच्छा बहाना है बच्चू!" तभी रजनी बोली, "नहीं भैया सच्ची! वहाँ भूत आते हैं। रोज़ कोई न कोई लड़की बेहोश होती है। इसलिए आजकल हम स्कूल नहीं जा रहे हैं।" राजू ने भी सिर हिलाकर हामी भरी। पर मिंटू भैया को ज़रा यकीन नहीं हुआ। उन्होंने चाची से सही बात जानना चाही। चाची ने भी वही सब कहा। बस उसमें एक नई बात यह जोड़ दी थी कि भूत को भगाने के लिए झाड़-फूँक करनेवाले एक ओझा की मदद ली जा रही थी। मिंटू भैया के लिए सारी बातें समझ से बाहर थी। उन्होंने ठान लिया कि अब तो स्कूलवाले भूत के रहस्य का पता लगा कर ही रहेंगे।

शाम को जब चाचा घर वापस आए तो एक बात यह भी पता चली कि भूत ज़्यादातर लड़कियों को ही पकड़ रहे हैं। अगले दिन मिंटू भैया राजू और रजनी को लेकर स्कूल गए। राजू और रजनी डरे हुए थे। पर भैया के साथ से हिम्मत बँधी हुई थी। मिंटू भैया ने सबसे पहले स्कूल का मुआयना किया। मास्टरों से बात की। बच्चों से बात की। हर कमरे में जाकर देखा। खिड़कियों से झाँककर देखा। राजू और रजनी बहुत उत्सुकता से सब कुछ देख रहे थे। अचानक भैया को कुछ सूझा और उन्होंने हैडमास्टर साब से हाज़िरी रजिस्टर और सब लड़कियों के रिज़ल्ट माँगे। और बड़े ध्यान से उन्हें देखा। अचानक उनके चेहरे पर मुस्कान तैर गई। तभी स्कूल में "भूत आया! भूत आया!" का शोर मचा। हैडमास्टर साब और मिंटू भैया उस कक्षा की ओर लपके, जहाँ से आवाज़ें आ रही थीं। उन्होंने देखा कि एक लड़की बेहोश पड़ी है। झट उसके मुँह पर पानी के छींटे मारे गए। तब जाकर वो होश में आई। उसने बताया कि उसने भूत को देखा था। मिंटू भैया ने उससे पूछा, "अच्छा बताओ! भूत दिखने में कैसा था?" लड़की के पास इसका कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं था। उसने बस इतना ही कहा कि उसे कोई धुँधला-सा साया नज़र आया था। मिंटू भैया उस लड़की को उसके पिता के साथ डॉक्टर के पास ले गए। डॉक्टर ने उसे देखने के बाद कोई दवा तो नहीं दी लेकिन खून की एक जाँच कराने को कहा। वह रिपोर्ट तीन दिन बाद आनी थी।

रात को जब सब खाना खा रहे थे तो रजनी और राजू मिंटू भैया से बोले कि अब तो उन्हें यकीन हो गया कि भूत होता है! मिंटू भैया कुछ नहीं बोले। खाना खाने के बाद मिंटू भैया ने रजनी से पूछा, "रजनी ये बता कि तेरे स्कूल में किस लड़की को सबसे पहले भूत दिखा था?" "बबली को!" रजनी झट-से बोली। "भइया भूत होता है न!" राजू बीच में टपक पड़ा। "इसका जवाब तो तीन दिन बाद ही बताऊँगा।" मिंटू भैया बोले और सोने के लिए उठ खड़े हुए।

अगली सुबह राजू की आँख खुली तो मिंटू भैया घर पर नहीं थे। पता चला कि वे बबली के घर गए हैं। राजू को बड़ी हैरानी हुई। फिर दोनों तैयार होकर स्कूल के लिए निकल गए। स्कूलवाला भूत उनके दिलोदिमाग पर छाया हुआ था।

तीसरे दिन रात को सभी घरवालों ने मिंटू भैया को घेर लिया। उनके हाथ में एक कागज़ था। वे बोले, "जानते हो! वहाँ एक नहीं दो-दो भूत हैं! यह देखो यह है भूत।" "यह तो कागज़ है!" रजनी बोली। "यही तो है भूत! उस दिन जो लड़की बेहोश हुई थी, यह उसकी ब्लड रिपोर्ट है। वो बेहोश इसलिए हुई थी क्योंकि उसके शरीर में खून की कमी है। खून में आयरन की कमी होने से कमज़ोरी, चक्कर, बेहोशी छाने लगती है। वह लड़की अपने खाने-पीने पर तनिक भी ध्यान नहीं देती थी। इसलिए कमज़ोर थी!" मिंटू भैया ने समझाया। "लेकिन इससे पहले भी तो कई लड़कियाँ बेहोश हुई थीं बेटा! उसका क्या!" चाची ने पूछा। मिंटू भैया हँसे। बोले, "बताता हूँ चाची! सबसे पहले स्कूल में बबली को भूत दिखा था! क्यों रजनी!" "हाँ भैया।" रजनी बोली। मिंटू भैया आगे बोले, "उस पर भूत आने का कारण उसका पढ़ाई में मन न लगना है। वह स्कूल जाने से बचने के लिए भूत का नाटक करती थी।" "ये कैसे पता?" चाचा ने सवाल दागा। "चाचा, जब मैं राजू और रजनी के साथ स्कूल गया

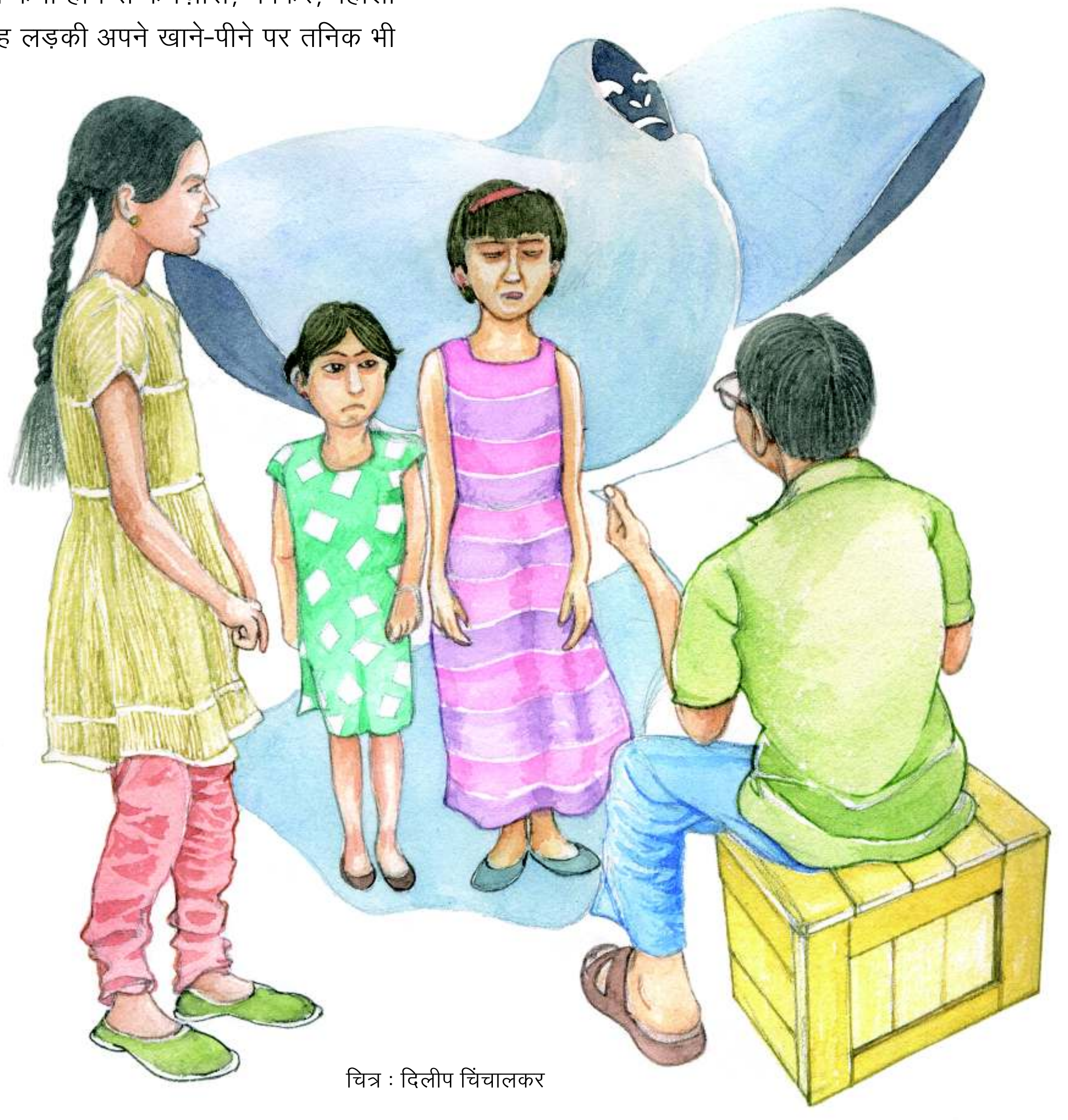

वहाँ एक नहीं दो-दो भूत हैं! यह देखो यह है भूत।
"यह तो कागज़ है!" रजनी बोली।
"यही तो है भूत! उस दिन जो लड़की बेहोश हुई थी, यह उसकी रिपोर्ट है।"

चित्र : दिलीप चिंचालकर

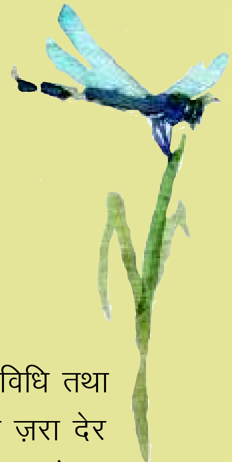

प्रिय दोस्तो,

दो-तीन बातें तुमसे कहनी हैं –

पहली, बोली रंगोली, परीक्षा, संख्या गतिविधि तथा इजोड़-बिजोड़ के कई पत्र हमें मिले। पर ज़रा देर से मिले। पर तुम सबको शुक्रिया। इतने मन से सारी गतिविधियाँ करने के लिए। इनमें से चुनिन्दा चिट्ठियाँ व चित्र तुम अगले अंक में देखोगे। जो दोस्त पिछली बार नहीं भेज पाए थे उन्हें भी एक मौका है – हम 10 अप्रैल तक मिलनेवाली चिट्ठियों को शामिल कर पाएँगे।

इस बार से अगर-मगर कॉलम (देखो, पेज 4-5 पर) शुरू कर रहे हैं। इसमें तुम्हारे सवालों के जवाब गुलज़ार साब देंगे। तो इस कॉलम के लिए तुम्हारे सवालों का इन्तज़ार रहेगा। सवाल तुम ईमेल से, एसएमएस से, वाट्सएप से या चिट्ठी लिखकर जैसे चाहो भेज दो।

इन छुट्टियों में तुम्हारी कहानियों, चित्रों का और चिट्ठियों का इन्तज़ार रहेगा। हमारा पता, फोन, ईमेल तो तुम्हें पता ही है।

– शशि सबलोक, सुशील शुक्ल

भूल सुधार

पिछले महीने की चकमक में हमने कार्ल सेगन की किताब हलकी नीली दुनिया का एक अंश दिया था। उसकी भूमिका से यह आभास हो सकता है कि वॉयज़र अपना मिशन पूरा कर वापस पृथ्वी पर लौट आया है। दरअसल ऐसा है नहीं वॉयज़र एक तरफा मिशन पर गया है। वो फोटो जो हमने दी थी वह उसने सौरमण्डल से निकलते वक्त खींची थी। वॉयज़र अभी भी अन्तरिक्ष में है और वहाँ से सिग्नल भेज रहा है। ऐसा वो 2025 तक करता रहेगा।

था, तभी मुझे शक हो गया था कि ये भूत का नाटक शुरू करनेवाली बबली है। उसके सभी विषयों में उसके बहुत कम नम्बर आए थे। और स्कूल न जाने पड़े इसलिए वो बेहोश होने लगी। पर बेटा, तुम यह बात इतने यकीन से कैसे कह सकते हो!" चाची बोली। "मैं कहाँ कह रहा हूँ चाची! मुझे तो खुद बबली ने यह बताया है। पहले स्कूल जाने से बचने के लिए वह बार-बार पेट दर्द का बहाना बनाती थी। पर जब उसके बापू यह बहाना समझ गए तो उसने भूतवाला नया बहाना बनाया। उसकी यह तरकीब चल गई तो देखा-देखी कुछ दूसरी लड़कियों और लड़कों को भी बैठे-बिठाए एक नई तरकीब मिल गई। और सभी ने भूत से बेहोश होने का नाटक शुरू कर दिया।" "वाह भइया! आपने कमाल कर दिया!" राजू ताली बजाते हुए बोला। तभी मिंटू भैया ने अपनी जेब से एक कागज़ निकाला और बोले, "जानते हो बबली का मन पढ़ाई में क्यों नहीं लगता है! "जी चुराती है और क्या!" राजू बोला। "नहीं यह बात नहीं है! उसी दिन मैंने बबली को भी डॉक्टर साहब को दिखाया था। डॉक्टर साहब ने उसकी भी खून की जाँच करवाई थी। और उसमें भी खून की कमी पाई गई है। असली भूत यही है जो आज हमारी अधिकतर लड़कियों के अन्दर घर बना बैठा है। न तो इनके घरवाले, न ही ये खुद अपने खान-पान पर ध्यान देती हैं। इस से वे कुपोषित हो गई हैं। खून की कमी की वजह से ही धुँधलापन, कोई साया-सा नज़र आता है। थकान तथा कमज़ोरी भी एक वजह है जिससे पढ़ने में मन नहीं लगता।" हाँ, तभी तो उसने कहा था कि कोई धुँधला-सा नज़र आया था!" राजू तपाक से बोला। "हाय! चक्कर तो मुझे भी आते हैं!" चाची मुँह बनाते हुए बोलीं। "चाची, खाना ठीक से खाओ। और गुड़ खाओ। गुड़ में बहुत आयरन होता है।" "तभी तो मैं कहूँ कि हमारे गाँव की अधिकतर लड़कियाँ पीली-पीली थकी-सी क्यों दिखती हैं। लड़कों का क्या है! वो तो माँग-छीनकर पेट भर लेते हैं।" और फिर लड़कों को हर मामले में कुछ ज़्यादा तवज्जो भी तो हमी देते हैं। चाचा बोले।

भूत का रहस्य सुलझ चुका था। और साथ ही मिंटू भैया के शहर जाने का समय आ गया था। स्कूल में बड़े दिनों तक मिंटू भैया की चर्चाएँ होती रहीं। और भूत तथा भूत भगानेवालों के मज़ाक बनाए जाते रहे।

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

एक बार हाजी और नाजी ने तय किया कि छोटे-मोटे काम बहुत हो गए, अब कोई बड़ा काम किया जाए।

तय तो कर लिया, लेकिन समझ में नहीं आया कि किया क्या जाए!

जो सोचते उसी में सौ खुच्चड़ नज़र आते।

दोनों सोच में डूबे अपने-अपने घर को निकल गए।

रात को सपने में हाजी को एक बड़ा उम्दा विचार आया।

सुबह उठते ही उसने इस पर अमल शुरू कर दिया।

उसने एक ऊँट किराए पर लिया, मण्डी में जाकर उस पर प्याज़ लादी और ऊँट लेकर जाने कौन गाँव के लिए रवाना हो गया।

जाने कौन गाँव के बारे में सुना तो सबने था लेकिन डर के मारे वहाँ जाता कोई नहीं था। लोगों का कहना था कि वह गाँव है तो सोने-चाँदी से भरा हु आ, लेकिन वहाँ के लोग नरभक्षी हैं। एक बार एक आदमी हिम्मत करके गया था, आज तक लौटकर नहीं आया।

जाने कौन गाँव के लोगों ने कभी प्याज़ नहीं देखी थी। इसलिए जब हाजी प्याज़ लेकर वहाँ पहुँचा तो उन्हें प्याज़ इतनी पसन्द आई कि उन्होंने ऊँट पर लदी सारी प्याज़ उतरवा ली और बदले में ऊँट पर सोना लादकर हाजी को बिदा किया।

नाजी को जब यह बात पता चली तो उसका जी जल गया। उसने सोचा हाजी का बच्चा, कम अकल, ऊँट भर सोना पा सकता है तो मैं क्या इससे कम हूँ?

अगले दिन नाजी ने ऊँट किराए पर लिया, मण्डी जाकर उस पर लहसुन भरवाया और जाने कौन गाँव के लिए चल पड़ा।

जाने कौन गाँव के लोगों ने लहसुन भी कभी नहीं देखा था। लहसुन उन्हें इतना ज़्यादा पसन्द आया कि प्याज़ से भी ज़्यादा, और वे सोच में पड़ गए कि इसके बदले इस चीज़ को लानेवाले फरिश्ते को क्या दिया जाए!

वे काफी देर सोचते रहे और फिर उन्होंने ऊँट पर से सारा लहसुन उतरवाकर उसकी जगह प्याज़ भरकर नाजी को विदा किया।

चित्रः अतनु राय

भूरी बाई

मिट्‌टी के रंगों की कहानी

भूरी बाई हमारे देश की जानी-मानी चित्रकार हैं। दुनिया भर में उनके चित्रों को प्रदर्शित किया जाता रहा है। हाल में ही भोपाल के कला केन्द्र भारत भवन में उनके चित्रों का संसार दिखाया गया। भूरी भाई के चित्रों की एक झलक तुम्हें भी दिखाने का ख्याल तभी आया। उनके कुछ चित्र अगले अंकों में भी शाया होंगे। उनसे हुई बातचीत के अंश भी तुम यहाँ पढ़ोगे।

चकमक : आप यहाँ भोपाल आने के बारे में कुछ बताइए।

भूरी बाई : भोपाल तो मैं अपने पति के साथ आई थी। मज़दूरी करने। ये भारत भवन बन रहा था तब। उन दिनों की बात है। कितने साल हो गए... (81-82 शायद!) हाँ, ऐसे ही कुछ। किस्मत की बात देखो कि मज़दूरी मिली तो भारत भवन बनाने की मिली। ईंट-गारे ढोती थी। स्वामीनाथन (प्रसिद्ध चित्रकार, भारत भवन नामक इस कला केन्द्र को गढ़ने में उनकी अहम भूमिका थी।) मज़दूरों से बातचीत करते रहते थे। एक दिन वे मेरे पास आए। मेरे से कई बातें पूछीं – कौन समाज हो?, रीति-रिवाज़? शादी-ब्याह कैसे होते हैं? गाँव-खेत सब की बातें पूछीं। मैंने अपने बारे में सब चीज़ें बताईं। मैं हिन्दी जानती नहीं थी। भीली आती थी। पढ़ी-लिखी हूँ नहीं। मैं मिट्‌टी के रंगों से चित्र भी बनाती थी कभी-कभी। तो मैंने ये बात भी उनको बताई। उनने मुझसे कहा चित्र बनाओगी? मैंने कहा, हाज़िरी छोड़ के

चित्र बनाऊँगी तो खाऊँगी क्या? हाज़िरी (एक दिन की मज़दूरी) के छह रुपए मिलते थे उन दिनों। स्वामीनाथन ने कहा – हाज़िरी छह की जगह दस रुपए मिलेगी। मैंने कहा, नहीं बस छह रुपए ही मिल जाएँ। भारत भवन के पीछे जो एक मन्दिर है। बस वहीं बैठ के मैंने पाँच दिन लगाकर एक चित्र बनाकर दिया। वे बड़े खुश हुए। मुझे पाँच दिन के पचास रुपए मिले। इस तरह चित्र का काम शुरू हुआ। आज उसी भारत भवन में मेरे चित्रों की प्रदर्शनी लगी है। उन्हीं दीवारों पर जिन्हें मैंने भी बनाया था। यह सोचकर अच्छा लगता है। और स्वामी बाबा की याद भी आती है। जैसे मैं अपने देवी-देवताओं को याद करती हूँ वैसे ही स्वामी जी को याद करती हूँ।

चकमक : इससे पहले तो आप दीवाल पर चित्र बनाती थीं। कागज़ पर अचानक चित्र बनाना कैसा लगा?

भूरी बाई : हाँ, थोड़ा अलग लगा। मोटा-सा कागज़ था। गत्ते जैसा। मैंने वैसे ही रंग बनाए जैसे मैं अपने गाँव में बनाती थी। मिट्टी के रंग (छुई-खड़िया मिट्टी, गेरू), पत्तों-फूलों के रंग।

चकमकः आज भी रंग बनाती हैं?

भूरीबाईः नहीं, एक्रिलिक कलर इस्तेमाल करती हूँ।

चकमकः उन दिनों की और क्या याद है? भोपाल आने के आसपास के समय के बारे में?

भूरीबाईः मेरी शादी किसी और से होने का चल रहा था। और मुझे एक गुजराती लड़का अच्छा लगता था। वह शादीशुदा था। पर मैंने सोच लिया था कि इसी से शादी करनी है। मेरे चाचा ने मेरा साथ दिया। हमने शादी की और भोपाल चले आए। पूरा परिवार हमसे नाराज़ था। उन दिनों चप्पल तक नहीं थी पैरों में। यह मन में आता भी नहीं था कि चप्पल नहीं है। एक समय पाँव में चप्पल नहीं थी और एक समय फिर इन्हीं चित्रों की बदौलत पूरी दुनिया घूम डाली। जहाँ-जहाँ गई उन जगहों के चित्र बनाए। यहाँ प्रदर्शनी में मेरे जीवन के सब चीज़ों के चित्र देख लो। चित्र जीवन के आसरे जैसे हो गए। पूरा जीवन है इनमें। 52-53 चित्र हैं सब मिलाके यहाँ। पूरा जीवन देख लो इनमें।

मेरे पति ने मेरा बहुत साथ दिया। हर वक्त-ज़रूरत पर। लोगों ने बहुत कान भरे पर वह मेरे साथ खड़ा रहा।

चकमकः बचपन की क्या यादें हैं?

भूरीबाईः बचपन अच्छा था। पर बहुत मुसीबतों भरा था। आज सोच-सोचकर परेशान हो जाती हूँ। माँ-पिता दोनों मज़दूर थे। माँ ढूँढ-ढूँढ के सबसे सस्ता अनाज लाती थी। जहाँ तक दो रुपए का पाँच किलो अनाज मिलता था। वो भी मिलावटवाला। उसमें तीन-चार अनाज मिले रहते थे। माँ घर आकर सब अनाज अलग-अलग करती थी। ज़्यादातर तो घर में राबड़ी बनती थी। मिट्टी के कटोरे थे। माँ उनमें सबको बराबर बाँट के देती थी। मैं माँ से लड़ती थी – मैं ढोर चराने जंगल जाती हूँ। मुझे बहुत भूख लगती है। मुझे थोड़ा ज़्यादा मिलना चाहिए। पर वो सबको बराबर बाँट देती थी। उन दिनों मैं 8-9 साल की थी और मेरी बड़ी बहिन 11-12 साल की। मैं और मेरी बड़ी बहिन जंगल से पीपल के पत्ते और लकड़ी भी बटोरते थे। उन्हें रेल में बेचते थे। दाहोद के पास अनस ढाड़िया स्टेशन पर। चार आने में पीपल पत्ती के गट्ठर बिकते थे। बहुत परेशानी थी। मेरे पिता नरम थे। ज़्यादा कुछ नहीं कहते थे। माँ सब चलाती थी। घर देखती थी। दाहोद भी याद है। वहाँ मेरे पिता को एक रुपया रोज़ मज़दूरी मिलती थी। और मेरी माँ और बहिन दोनों को पचास-पचास पैसे। मेरी बहिन शादी नहीं करना चाहती थी। तो किसी ने हमारे घर में आग लगा दी। हमारे ढोर जल गए। घर जल गया। सब याद आता है। ....याद करके परेशान हो जाती हूँ।

चकमकः अब गाँव जाना होता है?

भूरीबाईः मेरा गाँव पिटोई मोरी बाबड़ी झाबुआ ज़िले में है। गाँव तो हर पल याद रहता है। हर कभी जाती हूँ। शादी-ब्याह, तीज-त्योहार, सुख-दुख, होली-दिवाली। हर साल भगोरिया वहीं करती हूँ। मेरा एक बेटा वहीं रहता है। खेती-बाड़ी करता है। चार बेटे और बहुएँ सब यहीं भोपाल में रहते हैं। मैंने सबको चित्र बनाना सिखाया है। मेरी बेटी-बेटे-बहू सबको। और भी अगर कोई सीखना चाहता है तो सिखाती हूँ।

दोनों चित्रः भूरी बाई

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल